विंध्याचल कृषि

वर्ष -1 अंक -1 फरवरी 2014

एकेएस विश्वविद्यालय, सतना - 485002 (म.प्र.) का मुख्य पत्र

Madhya Pradesh (District Map)

" मध्य प्रदेश के किसानों की कड़ी मेहनत के कारण अनाज उत्पादन में हम 13.4 प्रतिशत की वृद्धि दर हॉसिल कर देश में प्रथम स्थान पर पहुंच चुके हैं। इसी कृषि वृद्धि के परिणाम स्वरूप म.प्र. राज्य को महामहिम राष्ट्रपति ने कृषि कर्मण पुरसकार से नवाजा है, जो म.प्र. की जनता के लिए गौरव की बात है। "

शिवराज सिंह चौहान
माननीय मुख्यमंत्री, म.प्र. शासन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पेज नं.
1.	सम्पादकीय	1
2.	देश की आत्मा – किसान	3
3.	भारत की धरोहर हल्दी	4
4.	स्वी विधि से गेहूँ की खेती	8
5.	बच्चों को जिम्मेदार बनाती है बागवानी	10
6.	गेहूँ की बुआई	11
7.	समेकित कीट प्रबन्धन में लाल मिर्च की साझेदारी	13
8.	टिकाऊ कृषि तथा ग्रामीण समृद्धि का आधार केंचुआ	15
9.	मध्य प्रदेश में लहसुन की व्यावसायिक खेती का आर्थिक विश्लेषण	17
10.	मध्यप्रदेश में चने की वैज्ञानिक खेती	20
11.	दलहनी फसलों में समेकित कीट प्रबंध	23
12.	सघन कृषि प्रणाली में खाद तथा उर्वरक प्रबन्धन	26
13.	सब्जियों को सुखा कर रखने की घरेलू विधि	28
14.	टमाटर एवं बैगन में रोग प्रबन्धन	30
15.	चमकते बर्तनों का राज	35
16.	कृषि में जैवप्रौद्योगिकी की उपयोगिता की एक झलक	36
17.	भू एवं जलसंरक्षण	38
18.	सात समंदर पार बिहार के नालंदा जिला के किसानों की चर्चा	43
19.	भतुआ की वैज्ञानिक खेती	44
20.	भिण्डी की नवीन किस्में	47
21.	हरी खाद अर्थात स्वस्थ मृदा और सुखी किसान	48
22.	भारतीय कृषि विकास में कृषि अभियंत्रण की भूमिका	51
23.	गाजर के स्वादिष्ट व्यंजन	53
24.	कागजी नींबू की वैज्ञानिक खेती	56
25.	विषाणु क्या है?	57

विन्ध्याचल कृषि
वर्ष : 1, अंक :1
फरवरी 2014

मुख्य संरक्षक :
श्री बी.पी. सोनी
कुलाधिपति
ए.के.एस. विश्वविद्यालय
⁂
संरक्षक :
प्रो. अशोक कुमार
कुलपति
ए.के.एस. विश्वविद्यालय
⁂
अध्यक्ष :
इं. अनन्त कुमार सोनी
अध्यक्ष, ए.के.एस. विश्वविद्यालय
⁂
सह अध्यक्ष :
प्रो. भूषण दीवान
प्रति कुलपति, ए.के.एस. विश्वविद्यालय
⁂
सलाहकार :
प्रो. आर.पी.एस. धाकरे
अधिष्ठाता (जीव विज्ञान एवम् औषधि विज्ञान)
प्रो. आर.एस. निगम
अधिष्ठाता (अनुसन्धान एवम् विकास)
प्रो. आर.एन. त्रिपाठी
अधिष्ठाता (मौलिक विज्ञान)
प्रो. सदाचारी सिंह तोमर
अधिष्ठाता (अनुसन्धान)
डॉ. जी.के. प्रधान
अधिष्ठाता (अभियंत्रण)
श्री सोनू कुमार सोनी
मुख्य प्रशासक (सूचना एवं तकनीक)
⁂
मुख्य सम्पादक :
प्रो. के.आर. मौर्य
अधिष्ठाता, कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संकाय
⁂
वरिष्ठ सम्पादक :
डॉ. नीरज वर्मा
विभागाध्यक्ष, कृषि विज्ञान
सहायक सम्पादक :
डॉ. डूमर सिंह
आशुतोष कुमार मौर्य
अफसारिका आजमी खान
कम्प्यूटर डिजाइयनिंग :
आशीष खरे
कम्प्यूटर टायपिंग :
अमित दुबे

विंध्याचल कृषि

एकेएस विश्वविद्यालय, सतना - 485002 (म.प्र.)
का मुख पत्र

(University established by M.P. Legislature Act No. 44 of 2011, Under Section 2(f) of UGC Act)

AKS University, Satna

THE UNIVERSITY WITH DIFFERENCE

श्री बी.पी. सोनी
कुलाधिपति

सन्देश

मध्यप्रदेश के आर्थिक विकास में कृषि तथा पशुपालन की महत्वपूर्ण भूमिका है। शासन स्तर पर कृषि की नवीन तकनीक किसानों तक पहुंचाने के काफी प्रयास किये गये हैं, लेकिन अभी भी इस दिशा में बहुत काम करना बाकी है। कृषि की अद्यतन तकनीकियों को मध्यप्रदेश के किसानों तक पहुँचाने के उद्देश्य से 26-28 फरवरी, 2014 को **'एग्रीटेक मध्यप्रदेश' - किसान मेला 2014** का आयोजन एकेएस विश्वविद्यालय, सतना कर रहा है जिसमें भारी संख्या में किसान, प्रसार कार्यकर्ता, छात्र-छात्राएं, स्वयंसेवी संस्थाएं तथा विभिन्न राज्यों के कृषि वैज्ञानिक भाग लेने आ रहे हैं। कृषि की नवीन तकनीकों को किसानों तक पहुंचाने के लिए विश्वविद्यालय एक पत्रिका विन्ध्याचल कृषि का भी प्रकाशन कर रहा है जो एक सराहनीय कदम है।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि **एग्रीटेक मध्यप्रदेश** किसानों को उन्नत तकनीक संबंधी जानकारी उपलब्ध करायेगा तथा 'विन्ध्याचल कृषि' उनके लिये मार्ग-दर्शिका का काम करेगी।

मैं एग्रीटेक मध्यप्रदेश तथा विन्ध्याचल कृषि की सफलता की कामना करता हूँ तथा कृषि विज्ञान एवम् प्रोद्यौगिकी संकाय को इस पुनीत आयोजन हेतु हार्दिक बधाई देता हूँ।

श्री बी.पी. पोनी

गौरीशंकर बिसेन
मंत्री,
किसान कल्याण तथा कृषि विकास
मध्यप्रदेश

मंत्रालय : कक्ष क्रमांक-541, 5वीं मंजिल,
वल्लभ भवन, मंत्रालय, भोपाल
दूरभाष नं. : 0755-2441709, 2512587
ई.पी.बी.एक्स. नं. 2587
निवास : बी-28, स्वामी दयानंद नगर,
74 बंगले, भोपाल
दूरभाष/फैक्स नं. 0755-2579717, 2570242
E-mail: ministeragri@gmail.com
जावक क्र./90/मंत्री/कि.क. तथा कृ.वि./2014
भोपाल, दिनांक 11/01/14

सन्देश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि एकेएस विश्वविद्यालय, सतना के कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संकाय द्वारा विन्ध्य क्षेत्र में **'एग्रीटेक मध्यप्रदेश' - किसान मेला 2014** का आयोजन किया जा रहा है। यह और भी हर्ष का विषय है कि विश्वविद्यालय कृषि के क्षेत्र में किसानों को नवीनतम जानकारी प्रदान करने के उद्देश्य से एग्रीटेक मध्यप्रदेश का आयोजन किया जा रहा है। यह और भी हर्ष का विषय है कि विश्वविद्यालय कृषि के क्षेत्र में किसानों को नवीनतम जानकारी प्रदान करने के उद्देश्य से **'विन्ध्याचल कृषि'** नामक पत्रिका के प्रकाशन के साथ-साथ, कृषि प्रदर्शनी, कृषि गोष्ठी, कृषि ज्ञान प्रतियोगिता तथा उद्यान प्रदर्शनी का भी आयोजन करने जा रहा है।

आशा है विश्वविद्यालय के इस आयोजन से क्षेत्र के कृषकों को उन्नत कृषि के संबंध में समग्र जानकारी और प्रशिक्षण प्राप्त हो सकेगा।

पत्रिका के प्रकाशन एवं आयोजित कार्यक्रम की सफलता की कामना करता हूँ।

भवदीय,

(गौरीशंकर बिसेन)

उमाशंकर गुप्ता
मंत्री

उच्च शिक्षा,तकनीकी शिक्षा
एवं कौशल विकास विभाग
मध्यप्रदेश शासन, भोपाल

पत्र क्र. : Sandesh/34
भोपाल, दिनांक : 07/07/2014

सन्देश

अत्यंत प्रसन्नता का विषय है कि कृषि विज्ञान एवं तकनीकी संकाय, ए.के.एस. विश्वविद्यालय सतना द्वारा तीन दिवसीय 'एग्रीटक मध्यप्रदेश' - किसान मेला 4014 का आयोजन किया जा रहा है एवं इस अवसर पर पत्रिका ''विन्ध्याचल कृषि'' का भी प्रकाशन किया जा रहा है।

विश्वविद्यालय द्वारा अयोजित 'एग्रीटक मध्यप्रदेश' कार्यक्रम अत्याधिक सराहनीय कार्य है, जिसके माध्यम से किसानों की कृषि संबंधी समस्याओं का भी समाधान किया जायेगा।

आशा है पत्रिका में कृषि से संबंधित जानकारियों केसाथ मध्यप्रदेश शासन द्वारा कृषि विकास एवं कृषक कल्याण हेतु चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं का भी समावेश होगा एवं इसमें प्रकाशित जानकारी कृषकों, कृषि व्यवसाय से जुड़े लोगों के लिये अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

मेरी ओर से मेले के सफल आयोजन एवं पत्रिका के प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं।

आपका,

(उमाशंकर गुप्ता)

Prof. M.S. Swaminathan

Founder Chairman and Chief Mentor,
M S Swaminathan Research Foundation
UNESCO Chair in Ecotechnology
Third Cross Street, Taramani Institutional Area
Chennai - 600 113
Tel : + 91 44 2254 2790 / 2254 1229 / 2254 1698;
Fax : + 9144 2254 1319
Email: founder@mssrf.res.in / mssami@vsnl.net

MESSAGE

Iam glad that the AKS University is organizing a **Farmer's Fair** on **26-28 February, 2014** at Satna. This is appropriate since we must celebrate the contributions of our farmers, leading to the transition from a ship to mouth existence to right to food with home grown foods, as enshrined in the National Food Security Act 2013. Madhya Pradesh is a biodiversity paradise and is rich in agro biodiversity like durum wheat. We need to strengthen the relationships between scientists and farmers, so that the scientific know-how gets converted into field level do-how. I congratulate Prof KR Maurya on his efforts to bring about close linkages between scientists and farmers.

M S Swaminathan

(M S Swaminathan)

(University established by M.P. Legislature Act No. 44 of 2011, Under Section 2(f) of UGC Act)

AKS University, Satna

THE UNIVERSITY WITH DIFFERENCE

अशोक कुमार, पीएच.डी.
कुलपति

सन्देश

मध्यप्रदेश एक कृषि सम्पदा सम्पन्न राज्य है। यहां के अधिकांश लोगों की जीविका कृषि एवम् पशुपालन पर आधारित है। अतः आम लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए हमें कृषि और पशुपालन को वैज्ञानिक तौर-तरीके से विकसित करना होगा।

मुझे यह जान कर अत्यन्त हर्ष की अनुभूति हो रही है कि एकेएस विश्वविद्यालय, सतना **'एग्रीटेक मध्यप्रदेश' - किसान मेला 2014** का आयोजन करने जा रहा है जिसमें कृषि प्रदर्शनी, उद्यान प्रदर्शनी, किसान ज्ञान प्रतियोगिता तथा कृषक संगोष्ठी मुख्य आकर्षण के केन्द्र होंगे। इस मेले में भारी संख्या में किसान, प्रसार कार्यकर्ता, वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान के छात्र तथा बीज एवं यंत्र विक्रेता एक मंच पर आकर कृषि की समस्याओं पर विचार करेंगे। इस अवसर पर विश्वविद्यालय विन्ध्याचल कृषि नामक किसानोपयोगी पत्रिका का प्रकाशन भी कर रहा है जो कृषि विकास हेतु एक कारगर प्रयास है। आशा है कि एग्रीटेक मध्यप्रदेश तथा कृषि पत्रिका किसानों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होगी जिससे खेती के नए तौर-तरीकों के साथ उनके चेहरे पर मुस्कान होगी।

मैं एग्रीटेक मध्यप्रदेश तथा विन्ध्याचल कृषि की सफलता हेतु अपनी हार्दिक शुभकामना देता हूँ तथा इसके आयोजक प्रो. मौर्य, अधिष्ठाता कृषि को बधाई देता हूँ।

अशोक कुमार

सत्यमेव जयते

डॉ. एस. अय्यप्पन
सचिव एवं महानिदेशक

DR. S. AYYAPPAN
SECRETARY & DIRECTOR GENERAL

भारत सरकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग एवं
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली 100 001

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF AGRICULTURAL RESEARCH & EDUCATION
AND
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
MINISTRY OF AGRICULTURE, KRISHI BHAVAN, NEW DELHI 100 001
Tel.: 23382629; 23386711 Fax : 91-11-23384773
E-mail : dg.icar@nic.in

सन्देश

ए.के.एस. विश्वविद्यालय, सतना, कृषि की नवीन उपलब्धियों को कृषकों तक पहुंचाने के उद्देश्य से **'एग्रीटेक मध्यप्रदेश' - किसान मेला 2014** का आयोजन दिनांक 24-28 फरवरी, 2014 को करने जा रहा है। इस अवसर पर विश्वविद्यालय **''विंध्याचल कृषि''** पत्रिका का भी प्रकाशन करने जा रहा है जो बड़ा ही हर्ष का विषय है।

मध्य प्रदेश में कृषि विकास की अपार संभावनाएं हैं। देश की आर्थिक उन्नति के लिए कृषि का विकास अत्यन्त आवश्यक है और इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए कृषि की अद्यतन ज्ञान को सीमित संसाधन वाले किसानों तक पहुंचाने के लिए इस किसान मेला का आयोजन सराहनीय कदम है। इस अवसर पर **''विंध्याचल कृषि''** पत्रिका का प्रकाशन किसानों के हित में होगा।

मैं **'एग्रीटेक मध्यप्रदेश' - किसान मेला 2014** तथा **''विंध्याचल कृषि''** पत्रिका के प्रकाशन पर अपनी हार्दिक शुभकामना देता हूँ और आशा करता हूँ कि यह किसान मेला कृषि पत्रिका मध्य प्रदेश के किसानों के चेहरे पर खुशी लायेगी।

एस. अय्यप्पन

(एस. अय्यप्पन)

(University established by M.P. Legislature Act No. 44 of 2011, Under Section 2(f) of UGC Act)

AKS University, Satna

THE UNIVERSITY WITH DIFFERENCE

Dr. Bhushan Dewan
Pro-Vice Chancellor
Ph.D, M. Tech (IITD)
PGDCM (JBIMS), SMIEEE (USA)

Farmer :
- Vice President, Tata Consultancy Services
- President, TANLA Solutions Ltd.
- Sr. Vice President, Adani Group
- Commander, Indian Nawy
- Director S'qui Hr. Edn. VNS B-School
- Adj Professor, ABV-IIITM (GOI) Gwalior

सन्देश

मध्यप्रदेश की अधिकांश आबादी कृषि पर निर्भर है जो गाँवों में बसती है। इतनी बड़ी आबादी का विकास उनके जीवकोपर्जन के पेशे कृषि के विकास से ही सम्भव होगा। कृषि को विकसित करने हेतु हमें कृषि की नवीन प्रौद्योगिकियों को किसानों तक पहुँचाना होगा। इस पवित्र कार्य के सम्पादन हेतु एकेएस विश्वविद्यालय सतना (म.प्र.) एग्रीटेक मध्यप्रदेश का आयोजन तथा एक किसानोपयोगी पत्रिका 'विन्ध्याचल कृषि' का प्रकाशन करने जा रहा है जो एक प्रशंसनीय कार्य है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह मेला तथा पत्रिका किसानों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होगी।

मैं एग्रीटेक मध्यप्रदेश तथा विन्ध्याचल कृषि की सफलता की कामना करता हूँ तथा कृषि विज्ञान एवम् प्रौद्योगिकी संकाय के अधिष्ठाता प्रो. मौर्य को इस आयोजन हेतु साधुवाद देता हूँ।

(डॉ. भूषण दीवान)
प्रतिकुलपति
एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

(University established by M.P. Legislature Act No. 44 of 2011, Under Section 2(f) of UGC Act)

AKS University, Satna

THE UNIVERSITY WITH DIFFERENCE

इंजी. ए.के. सोनी

सन्देश

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हो रही है कि कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संकाय **'एग्रीटेक मध्यप्रदेश' - किसान मेला 2014** का आयोजन करने जा रहा है जिसमें भारी संख्या में किसान, प्रसार कार्यकर्ता, वैज्ञानिक, कृषि बीज तथा यंत्र आपूर्ति कर्त्ता भाग लेंगे। इस अवसर पर विश्वविद्यालय, विन्ध्याचल कृषि नामक पत्रिका का भी प्रकाशन करने जा रहा है।

कृषि की अद्यतन तकनीकों को किसानों तक पहुंचाने में किसान मेला का आयोजन तथा कृषि पत्रिका का प्रकाशन अपने आप में एक नया कदम है। इस मेले का मुख्य आकर्षण कृषि तथा उद्यान प्रदर्शनी, कृषि गोष्ठी तथा किसान ज्ञान प्रतियोगित होगी जिसके माध्यम से किसान अपनी समस्याओं का सही समाधान प्राप्त कर सकेंगे तथा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होगी।

मैं इस एग्रीटेक मध्यप्रदेश तथा विन्ध्याचल कृषि की सफलता की कामना करता हूँ तथा कृषि विज्ञान एवम् प्रौद्योगिकी संकाय को इस पवित्र आयोजन हेतु हार्दिक बधाई देता हूँ।

(ए.के. सोनी)
चेयरमैन
एकेएस विश्वविद्यालय, सतना

सम्पादक की कलम से....

भारत सदियों से एक कृषि प्रधान देश रहा है तथा कृषि हमारे जीवन का आधार है। हमारे देश की सस्य विविधता अद्वितीय है। विश्व की तमाम कृषि-योग्य प्रजातियों का अद्‌भव-स्थल भारत में ही है। तकनीकी ज्ञान को बढ़ाने में भारत विश्व भर में सदैव अग्रणी रहा है। भारतीय कृषि पद्धति में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के स्थान पर उन्हें अशुण बनाये रखकर उनका उपभोग करने की मौलिक नीति सन्निहित रही है।

पराधीनता के दौर में भारतीय कृषि के पिछड़ने से देश की बढ़ती जनसंख्या के समक्ष अकाल एवम् भुखमरी की समस्या खड़ी हो गई थी परन्तु हरित क्रान्ति के युग में हमने पुनः अपनी शक्ति को पुनर्जीवित किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम विज्ञान एवम् तकनीकी ज्ञान के सम्मिश्रण से अपनी पारम्परिक कृषि सम्पदा को अद्यतन एवम् नवीन ढंग से सशक्त करने में अवश्य सफल होंगे।

धरती को हम भारतवासी सदियों से माता के रूप में पूजते आये हैं। धरती माता की कोख में हम जिस फसल का बीज बोते हैं, माँ सहर्ष उससे कई गुना अधिक वही फसल हमें लौटा देती है। माँ का स्वास्थ्य बेहतर रहने से बच्चों का स्वास्थ्य बढ़िया होगा। अतः हमें अपनी धरती माँ को विषैले जहरीले रसायनों तथा रसायनिक उर्वरक, कीट एवम् व्याधि नाशक रसायनों से बचाना होगा। इनकी जगह पर गर्मी की जुताई, खेत को चौमास या पलिहर रखना, हरी खाद का प्रयोग, वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग, कम्पोस्ट तथा गोबर की खाद, खल्ली आदि का प्रयोग करना होगा जिससे धरती माता का स्वास्थ्य उत्तम बना रहे।

जब हम एक खेत में बार-बार एक ही फसल कई वर्षों तक उगाते हैं तो इसका नतीजा यह होता है कि तरह-तरह की कीट-व्याधियों की वृद्धि, फसल की उपज का कम होना, मिट्‌टी का कटाव तथा मिट्‌टी की गुणवत्ता में भारी कमी आ जाती है। इन समस्याओं का सीधा समाधान फसल विविधिकरण द्वारा सम्भव है। अतः हमें अपनी कृषि में अनाज वाली फसलों के अतिरिक्त दलहन, तिलहन, शाक-सब्जियाँ, मसाले तथा महत्वपूर्ण औषधीय फसलों की खेती करनी होगी।

खेती-बारी दो शब्दों का व्यवहार सदियों से भारतीय जन-मानस में लोकप्रिय रहा है। दो शब्दों का साथ-साथ आना इस बात का इजहार करता है कि हमारे पूर्वजों द्वारा 50 प्रतिशत भूमि पर कृषि तथा 50 प्रतिशत भूमि पर बारी (बागवानी) लगाने की नीति बनाई गई थी ताकि खाद्य, पोषण तथा पर्यावरण सुरक्षित होगा।

अब यह बात किसी से छिपी नहीं है कि किसानों के समृद्धि का रास्ता बाग-बागीचों से होकर गुजरता है। इसी उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए भारत सरकार ने पूरे देश में हार्टिकल्चर का विकास दर 8 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा है और नेशनल हार्टिकल्चर मिशन पूरे देश में लागू किया गया है। अतः हमें खेती के साथ-साथ फलों जैसे-आम, अमरूद, लीची, पपीता, केला, नींबू, मोसम्मी, संतरा, सकोतरा, बेल, बेर, आँवला, खजूर तथा रसभरी की बागवानी पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। खेती-बारी के साथ-साथ पशुपालन, मछली पालन, झींगा पालन, मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन, वर्मी कम्पोस्ट तथा मशरूम उत्पादन को अपनाना होगा तभी किसानों को नियमित आमदनी उपलब्ध हो सकेगी। जिससे किसानों को पूर्ण आर्थिक समृद्धि प्राप्त होगी और उनके चेहरे पर सदैव मुस्कान झलकती रहेगी। तो, आईये, हम सभी किसान भाई अपनी कृषि में विविधीकरण करके अपने परिवार, अपने राज्य-मध्यप्रदेश तथा अपने राष्ट्र भारत की समृद्धि की तरफ कदम बढ़ाये।

डॉ. के.आर. मौर्य

सम्पादक

अन्नद्भवन्ति भूतानिपर्जन्यादन्न संभवः

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुवः।

सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं,
अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से तथा वृष्टि की
उत्पत्ति यज्ञ से होती है और वह
यज्ञ सदकर्मों से होती है

– गीता ३ (१४)

देश की आत्मा - किसान

एक बार साम्राट नेपोलियन छुट्टी बिताने के लिए पेरिस से दूर एक छोटे से शहर में अपने मित्र के यहां आए। मित्र ने उन्हें वहां की कई सुंदर जगह दिखाई, लेकिन नेपोलियन को कोई जगह पसंद नहीं आ रही थी। उन्होंने कहा, 'मैं अपने देश की असली जिंदगी देखने आया हूँ। आप मुझे वह जगह दिखाएं, जहां देश की आत्मा बसती है। मैं देखना चाहता हूँ कि हमारे किसान व मजदूर किस हाल में हैं।' मित्र उन्हें लेकर शहर से दूर एक कस्बे में गया। वहां खेतों में फसलें लहलहा रही थीं, किसान काम में लगे थे। यह देखकर नेपोलियन बहुत खुश हुए। एक दिन वे दोनों एक संकरी गली से निकल रहे थे कि सामने से एक किसान सिर पर भारी बोझ रखकर लाता दिखा। गली इतनी तंग थी कि एक बार में एक आदमी ही निकल सकता था। किसान पसोपेश में पड़कर खड़ा हो गया, क्योंकि वह न तो निकल सकता था न ही मुड़ सकता था। मित्र चिल्लाया, अंधा है क्या? वापस जा।' वह मुड़ने ही लगा था कि लड़खड़ाकर गिरने लगा। नेपोलियन ने दौड़कर उसे सहारा दिया। फिर एक ओर होकर उसे रास्ता भी दिया। इसके बाद अपने मित्र से कहा, 'किसान की मेहनत से देश खाता है। इनकी उपेक्षा देश का तिरस्कार है।' अतः किसान ही देश की आत्मा है। यह बात सुनकर मित्र लज्जित हो गया।

भारत की धरोहर हल्दी

[ksrh dh m™kr fo/kk;sa

vk'kqrks"k dqekj eku; ,oe~ d-vkj- eku;
,-dh-, l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-iz-½

हल्दी भारत की धरोहर है। इसे मसालों की मल्लिका कहा गया है, क्योंकि इसका रंग सोने के समान होता है। हल्दी, दाल, सब्जी, अचार, चटनी तथा अन्य पकवानों को आकर्षक रंग प्रदान करती है। विश्व के कुल हल्दी उत्पादन का 10 प्रतिशत भाग अकेला भारत उत्पादन करता है। हल्दी की खेती बिहार, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, असम तथा उत्तर प्रदेश में होती है। बिहार में हल्दी की खेती चम्पारण, मुजफ्फरपुर, बेगूसराय, खगड़िया आदि जिलों में होती है। परन्तु किसान देशी किस्म मोरंगिया को लगाते हैं जिसकी उत्पादन क्षमता कम है तथा रोग का आक्रमण भी इस किस्म पर अधिक होता है।

भारत में हल्दी की खेती 1,07,700 एकड़ भूमि में होती है जिससे 2,94,000 टन उपज प्राप्त होती है। भारत में हल्दी की उत्पादकता 2.73 टन/हैक्टर है। बिहार में हल्दी की उत्पादकता राष्ट्रीय उत्पादकता से बहुत कम है। इस उत्पादकता को हल्दी की उन्नत किस्मों की खेती वैज्ञानिक तौर–तरीकों से करके बढ़ाई जा सकती है।

<u>समस्याएं</u> :–

1. हल्दी की फसल को तैयार होने में 9–10 महीने का समय लगता है। इस प्रकार यह दो फसल अवधि ले लेती है।
2. हल्दी की बीज दर 20–25 क्विंटल प्रति हैक्टर है जिसका काफी खर्च पड़ता है। यदि किसी किसान के पास इसका बीज नहीं है। तो उसे बीज पर अधिक खर्च करना पड़ता है।
3. हल्दी में प्रकन्द विगलन, पर्णधब्बा तथा पर्णचित्ती रोग काफी हानिकारक हैं जो हल्दी की उत्पादकता को कम कर देते है।

उपरोक्त समस्याओं को दूर करने के लिए हल्दी की अधिक उपज देने वाली तथा कम समय में तैयार होने वाली तथा उच्च गुणवत्ता वाली किस्मों का विकास किया गया है। साथ ही ऐसी कृषि प्रणाली विकसित की गई है जिस पर बीज पर होने वाला खर्च कम होता है। हल्दी में दोहरी अन्तरावर्ती फसल प्रणाली को भी विकसित किया गया है जिसे अपनाकर एक खेत में वर्ष में तीन फसलें ली जा सकती हैं।

उन्नत किस्में

विभिन्न राज्यों में हल्दी की अलग–अलग किस्मों का विकास हुआ है जो अधिक उपजाऊ है। उन्नत किस्में निम्नलिखित है :

राजेन्द्र सोनिया : यह किस्म राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय के ढोली केन्द्र द्वारा विकसित की गई है। इसकी सूखी तैयार हल्दी की उपज क्षमता 8–9 टन प्रति हैक्टर है। यह 210 दिनों में तैयार हो जाती है। इसमें सोंठ की मात्रा 19 प्रतिशत है तथा कुरकुमिन (पीला रंगीन रसायन) की मात्रा 8.5 प्रतिशत है। इसमें पर्ण धब्बा रोग नहीं लगता। इसकी खुदाई करके गेहूँ या प्याज की फसल लगाई जा सकती है।

मोरंगिया : उत्तर बिहार की यह स्थानीय किस्म है जो 255 दिनों में

तैयार होती है। इसके प्रकन्द पतले–पतले तथा छोटे होते हैं जिन्हें उबाल कर सुखाने पर सूखी तैयार हल्दी की प्रतिशत मात्रा 25–36 होती है। इस किस्म में पर्ण–धब्बा रोग अधिक लगता है, यह हल्दी, अरहर तथा मक्का की तीन सतही खेती के लिए उपयुक्त किस्म है। इस की उपज क्षमता 3.5–4 टन प्रति हैक्टर है।

ए.पी.317 : यह आंध्र प्रदेश की उन्नत किस्म है। यह 290 दिन में उत्तर भारत की आबोहवा में तैयार होती है। इसके पौधे चौड़ी पत्ती वाले तथा एक मीटर तक ऊचें होते हैं। पत्तियों का किनारा सीधा रहता है। इसके प्रकन्दों में कुरकुमिन की मात्रा 3.5 प्रतिशत होती है तथा सूखी तैयार हल्दी की उपज 5.5 टन प्रति हैक्टर होती है। यह किस्म पर्णचित्ती रोग से मुक्त परंतु पर्णधब्बा रोग से प्रभावित होती है।

चायापसुपा : यह आंध्र प्रदेश की महत्वपूर्ण किस्म है। इसके प्रकन्दों से चाय की खुशबू आती है, इसलिए इसका नाम तेलुगू भाषा में चायापसुपा रखा गया है। यह किस्म 255 दिनों में उत्तर भारत में तैयार हो जाती है। अच्छी फसल होने पर सूखी तैयार हल्दी की उपज 4. 5–5 टन प्रति हैक्टर प्राप्त होती है। यह किस्म पर्ण धब्बा रोग से ग्रसित हो जाती है।

स्वर्ण (पी.सी.टी.–12) : स्वर्ण अधिक उपज देने वाली हल्दी की केरल की किस्म है। इसके प्रकन्द मध्यम आकार के होते हैं तथा उनके गूदे का रंग नारंगी होता है। यह प्रकन्द गलन रोग की प्रतिरोधक किस्म है। इसके प्रकन्द में 7 प्रतिशत तेल होता है। यह किस्म 210 दिन में तैयार हो जाती है। इस किस्म की सूखी तैयार हल्दी की क्षमता 4.5 टन/है. तथा कुरकुमिन की मात्रा 8.7 प्रतिशत है।

जी.एल. पूरम–1 : यह आंध्र प्रदेश की उन्नत किस्म है। इसके पौधे अच्छे वातावरण में एक मीटर तक ऊंचे होते हैं। पत्तियां चौड़ी और किनारे सीधे होते हैं तथा पौधों पर पत्तियां सीधी खड़ी होती हैं। प्रकन्द बेलनाकार होते है। तने लंबे–लंबे और कम शाखाओं वाले होते हैं। सभी प्रकन्द मातृ प्रकन्द से सीधे जुड़े रहते हैं। इस किस्म की सूखी तैयार हल्दी की उपज क्षमता 5.5 टन प्रति हैक्टर तक पाई गई है। इसमें कुरकुमिन की मात्रा 3.5 प्रतिशत होती है तथा उत्तर भारत की आबोहवा में 275 दिन में तैयार होती है। इसमें पर्णचित्ती रोग नहीं लगता।

पी.सी.टी.–8 : हल्दी की इस किस्म का विकास भारतीय मसाला अनुसंधान संस्थान, कालिकट, केरल द्वारा किया गया है। इस किस्म की फसल से 4.5 टन सूखी तैयार हल्दी प्राप्त होती है। प्रकन्दों में 8.5 प्रतिशत कुरकुमिन तथा 6 प्रतिशत तेल होता है।

कोडूर : यह आंध्र प्रदेश की हल्दी की उन्नत किस्म है। इसके पौधे 90–95 से.मी. लम्बे, पत्तियां चौड़ी तथा प्रकन्द बेलनाकार तथा लंबे–लंबे होते हैं। इस किस्म में पर्णचित्ती रोग नहीं लगता है। सूखी तैयार हल्दी की प्रति हैक्टर उपज 4. 5–5 टन प्राप्त होती है।

रोमा (पी.टी.एस.–10) : यह भी अधिक उपज देने वाली किस्म है। इसे प्रकन्द पतले और मध्यम आकार के होते हैं। यह 253 दिन में खुदाई के लिए तैयार होती है। प्रकन्दों में 4.2 प्रतिशत तेल पाया जाता है। इस किस्म की अच्छी फसल से 6.45 टन सूखी तैयार हल्दी प्राप्त होती है।

सुगुना (पी.सी.टी.–13) : यह एक अधिक उपज देने वाली केरल की किस्म है। इसके प्रकंद छोटे आकार के होते हैं। फसल 190 दिन के बाद खुदाई के लिए तैयार हो जाती है। यह प्रकंद विगलन नामक रोग की प्रतिरोधी किस्म है। इस किस्म की सूखी तैयार हल्दी की उपज क्षमता 6.20 टन प्रति हैक्टर है।

सुरोमा (पी.टी.एस.–24) : यह अधिक उपज देने वाली उड़ीसा राज्य की किस्म है। इसे प्रकंद पतले और मध्यम आकार के होते हैं। फसल 210 दिनों में खुदाई के लिए तैयार हो जाती है। इसके प्रकन्द पतले और गूदा का रंग पीला होता है। प्रकन्द में 4.4 प्रतिशत तेल पाया जाता है। सूखी तैयार गांठो की क्षमता 5.19 टन प्रति हैक्टर है।

कोयम्बटूर–1 : इस किस्म का विकास तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर से हुआ है। यह तमिलनाडु की उन्नत किस्म है और बारानी क्षेत्रों में उगाने के लिए उपयुक्त है। इसे लवणीय मृदाओं में भी उगाया जा सकता है। इसके प्रकन्द बड़े और चमकीले नारंगी रंग के होते हैं। यह 285 दिन में खुदाई के लिए तैयार हो जाती है। यह प्रति हैक्टर 5.85 टन सूखी तैयार हल्दी की उपज देती है।

कृष्णा : यह महाराष्ट्र की अधिक उपज देने वाली किस्म है। इसका विकास हल्दी अनुसंधान केन्द्र, सांगली में हुआ है। इसके प्रकन्द लम्बे होते हैं। यह प्रकन्द विगलन की प्रतिरोधी किस्म है। यह 255 दिन में तैयार होने वाली किस्म है। इससे प्रति हैक्टर 4 टन सूखी तैयार हल्दी प्राप्त हो जाती है।

बी.एस.आर.–1 : यह अधिक उपज देने वाली तमिलनाडु की किस्म है। यह जलमग्न क्षेत्रों में उगाने के लिए उपयुक्त है। इसके कन्द चमकीले पीले रंग के होने हैं। इस किस्म के कन्द लम्बे होते हैं। फसल 285 दिन में खुदाई के लिए तैयार हो जाती है। इस किस्म से प्रति हैक्टर 6 टन सूखी तैयार हल्दी प्राप्त होती है। इस किस्म में कुरकुमिन की मात्रा 4.2 प्रतिशत होती है।

सुदर्षन (पी.सी.टी.–14) : यह भी हल्दी की अधिक उपज देने वाली उड़ीसा राज्य की किस्म है। इसके प्रकन्द घने और छोटे आकार वाले तथा देखने में काफी खूबसूरत होते हैं। यह किस्म 190 दिन में खुदाई के लिए तैयार हो जाती है। इस किस्म की सूखी तैयार हल्दी की गांठो की उपज क्षमता 7.25 टन प्रति हैक्टर है।

भूमि का चुनाव तथा तैयारी

हल्दी की अच्छी उपज के लिए सदैव बलुई दुमट भूमि चुनें। भूमि में जल–जमाव नहीं होना चाहिए, परन्तु जैवांश की अधिकता होने चाहिए। हल्दी की खेती हल्की भूमि में अच्छी होती है। चिकनी मिट्टी में प्रकन्दों का विकास अच्छी प्रकार नहीं होता है। क्षारीय भूमि में पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा पौधे बरसात के समाप्त होते ही सूख जाते हैं।

पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें। फिर 3–4 जुताई देशी हल से करें और प्रत्येक बार पाटा चलाकर मिट्टी को खूब भुरभुरी बना लें। अंतिम जुताई के समय मिट्टी में 25 टन सड़ी गोबर की खाद, 325 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट तथा 200 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति हैक्टर की दर से डाल कर अच्छी प्रकार मिला दें। यदि दीमक की आशंका हो तो 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से एल्ड्रीन डस्ट (15 प्रतिशत) भी मिट्टी में डालकर मिला दें और पाटा चलाकर खेत को समतल बना लें। इसी समय खेत से जल निकास हेतु नालियां 15 फीट की दूरी पर बना लें। इन नालियों की गहराई 6 इंच से ज्यादा न रखें।

हल्दी की बुआई का समय

हल्दी की बुआई के समय का इसकी उपज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अच्छी उपज के लिए इसे 15–31 मई के बीच अवश्य बो देना चाहिए।

बुआई की विधि

एक हैक्टर हल्दी की बुआई के लिए 20–25 क्विंटल बीज प्रकन्द की आवश्यकता होती है। ऐसे प्रकन्द जिनका वनज 21–25 ग्राम हो तथा जिनमें 3–4 स्वस्थ कलियां हों, बीज के लिए सबसे अच्छी होती हैं। बीज प्रकन्द के रूप में हमेशा लम्बी गांठों का उपयोग लाभदायक होता है, क्योंकि इनकी बुआई से उपज भी अच्छी प्राप्त होती है। अच्छी उपज

के लिए हल्दी के बीज प्रकन्द को 20 से.मी. की दूरी पर 5 से.मी. की गहराई में बोयें। पंक्ति की दूरी 30 से.मी. रखें।

बुआई के तुरन्त बाद खेत को शीशम की हरी पत्तियां से ढक देना लाभदायक है। राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय में हुए अनुसंधान से सिद्ध हो गया है कि शीशम की हरी पत्तियों से ढकने से उपज में 45 प्रतिशत की वृद्धि होती है। बुआई के 30–35 दिन के बाद फसल जम जाती है।

निकाई–गुड़ाई तथा मिट्टी चढ़ाना

हल्दी में तीन निकाई–गुड़ाई करें। बुआई के 30 दिन बाद, द्वितीय बुआई के 60 दिन बाद तथा तृतीय 90 दिन बाद करें। प्रत्येक निकाई–गुड़ाई के बाद 109 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टर का ऊपर से छिड़काव करें। निकौनी के समय पौधों की जड़ से चारों तरफ मिट्टी चढ़ाना न भूलें।

हल्दी में अन्तवर्ती दोहरी फसल प्रणाली

हल्दी की फसल अवधि में दो अंतराल फसलें उगाकर शुद्ध आय प्रति हैक्टर बढ़ायी जा सकती है। हल्दी बोने के बाद उसी खेत में धान का बिचड़ा उगायें। बिचड़ा 25–30 दिन में तैयार हो जाता है। इसे उखाड़ लें और बीच–बीच में जमे हुए हल्दी के पौधों को बचा दें। इसी वक्त प्रथम निकौनी करके यूरिया का छिड़काव कर दें। इस अन्तवर्ती फसल प्रणाली को अपनाकर आप दो लाख रुपये प्रति हैक्टर की शुद्ध आय प्राप्त कर सकते हैं। हल्दी + मक्का + अरहर की तीन सतही खेती काफी लाभप्रद हुई है।

उपज तथा आय–व्यय का लेखा जोखा

हल्दी की उन्नत किस्मों की खेती करने पर कच्ची हल्दी की 500 क्विंटल उपज प्रति हैक्टर प्राप्त होती है जिससे 80–100 क्विंटल सूखी हल्दी प्राप्त होती है। यदि इसे कम से कम 80 रुपये कि.ग्रा. भी बेचा जाए तो कुल 6,40,000 से 8,00,000 रुपये प्राप्त होते हैं। इसमें से यदि लागत के 40 हजार रुपये निकाल दिये जाएं तो 6,00,000 से 7,60,000 रुपये शुद्ध आय प्राप्त होगी। परन्तु पंजाब में 12 लाख प्रति हैक्टर शुद्ध आय राजेन्द्र सोनिया की खेती से मिली है।

+++

स्वी विधि से गेहूँ की खेती

/khjsUnz izlkn prqosZnh
,-d-,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-iz-½

मध्य प्रदेश भारत का हृदय स्थली है। यहा गेहूँ का क्षेत्रफल 4101 हजार हेक्टेयर, उत्पादन 6737 हजार टन एवं उत्पादकता 1714 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है जो कि पूरे भारत का 15 प्रतिशत क्षेत्रफल में व 9 प्रतिशत राष्ट्रीय औसत 2785 से 1071 किलो कम है। अतः गेहूँ की उत्पादकता बढ़ाने की अधिक गुंजाइस है। इसके लिए यदि गेहूँ की खेती स्वी विधि से किसान करें तो हम अपने राज्य के गेहूँ उत्पाद के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगें। उत्पादन में बढ़ोत्तरी करने की दृष्टि से स्वी विधि से गेहूँ की खेती करने के तौर तरीके प्रस्तुत लेख में लेखक ने वर्णन किया है।

एस.डब्लू.आई (सिस्टम ऑफ व्हीट इन्टेनसीफीकेषन) क्या है?

गेहूँ की खेती करने का यह एक तरीका है जिसमें धान की श्री विधि के सिद्धांतों का पालन कर के गेहूँ की अधिक उपज प्राप्त किया जा सकता है। इस विधि में कम से कम बीज दर (25 किलोग्राम/हेक्टेयर) का ही प्रयोग करते हैं तथा बीज उपचार एवं संशोधन अत्यन्त आवश्यक पहलू है। इस विधि में पौधों के बीच अधिक दूरी कतार से कतार 8 इंच एवं पौधा से पौधा की दूरी 8 इंच रखी जाती है। जब पौधे जम जाते हैं तो 15 दिनों बाद प्रथम सिंचाई की जाती है तथा खेत में निखार आने पर 2 से 3 बार वीडर से खरपतवार की निकासी एवं भूमि की गुड़ाई अत्यन्त आवश्यक है परन्तु फसल की देखभाल सामान्य गेहूँ की फसल की ही तरह की जाती है।

बीज एवम् बीजोपचार

बीज का चुनाव : इस विधि के लिए किसी खास बीज की जरुरत नहीं है, आपके इलाके के लिए जो उन्नत किस्म अनुशंसित है उसी के बीज का प्रयोग करें। अगर आप का घर का बीज पुराना है तो नया बीज खरीद लें। एक हेक्टयेर भूमि के लिए 25 किलो ग्राम पर्याप्त होता है।

बीजोपचार की विधि : 25 किलो ग्राम बीज में से मिट्टी, कंकड़ एवं खराब बीजों को छांट ले। अब 50 लीटर पानी एक बर्तन में 60° से. पर गर्म करें। छांटे हुए बीजों को इस गर्म पानी में डाल दें। पानी के ऊपर तैर रहे बीजों को छानकर हटा दें। तथा इस पानी में 12.5 किलो ग्राम केंचुआ खाद, 10 किलो ग्राम गुड़ एवं 10 लीटर गौमूत्र मिलाकर 8 घंटे के लिए छोड़ दें। 8 घंटे के बाद इस मिश्रण को एक कपड़े से छान लें जिससे बीज एवं अन्य मिश्रण घोल से अलग हो जाए और घोल के पानी को फेंक दें। बीज एवं अन्य मिश्रण में बाविस्टीन (कार्बेन्डाजिम) फफूंदीनाशक 75 ग्राम मिलाकर 12 घंटे के लिए अंकुरित होने के लिए गीले बोरे में बांधकर छोड दे। इस अंकुरित बीज को ही बोने के लिए इस्तेमाल किया जाएगा।

भूमि की तैयारी : भूमि की तैयारी सामान्य गेहूँ की खेती की तरह ही करते हैं। गोबर की खाद 50 क्विंटल या केंचुआ खाद 10 क्विंटल प्रति हेक्टेयर में प्रयोग करना चाहिए। कम्पोस्ट खाद की उचित मात्रा के बिना सिर्फ रासायनिक खाद का प्रयोग करते रहने से खेत की उपज क्षमता घटती जाती है। अगर खेत में पर्याप्त नमी नही है, तो बुवाई के पहले

एक बार पलेवा करना चाहिए।

अंतिम जुताई के पहले 67.5 किलो ग्राम DAP और 33.75 किलो ग्राम पोटाश खाद प्रति हेक्टेयर खेत में छींटकर अच्छी तरह हल से मिट्टी में मिला दें।

स्वी विधि से गेहूँ की बुआई

बुआई के समय खेत में अंकुरण के लिए पर्याप्त नमी होनी चाहिए क्योंकि अंकुरित बीज लगाए जा रहे हैं, अगर पर्याप्त नमी नहीं होगी तो अंकुर सूख जायेंगे। बीजों को कतार में 8 इंच की दूरी में लगाया जाता है। इसके लिए एक पतले कुदाली से 8 इंच की दूरी पर 1 से 1.5 इंच गहरी नाली बनाते हैं और इसमें 8 इंच की दूरी पर 2 बीज डालते हैं और उसके बाद मिट्टी से ढंक देते हैं।

एक सप्ताह के बाद जिस जगह बीज नहीं अंकुरित होते हैं वहां नया बीज लगा दिया जाता है।

खड़ी फसल की देखभाल–बुवाई के 15 दिन बाद

बुआई के 15 दिनों के बाद एक सिंचाई देना जरुरी है, क्योंकि इसके बाद से पौधों में नई जड़े आनी शुरु होती है। अगर जमीन में नमी न हो तो पौधा नई जड़े नहीं बनाएगा और बढ़वार रूक जाएगी। सिंचाई के बाद 100 किलो ग्राम यूरिया एवं 10 क्विंटल वर्मी कम्पोस्ट को मिलाकर छींट दें। सिंचाई के 2–3 दिन बाद पतले कुदाल या बीडर से मिट्टी को ढीला करें साथ ही खरपतवार भी निकाल दें। यह करना अति आवश्यक है नही ंतो सिंचाई और खाद देने के बाद खेत में खरपतवार भर जायेंगे। इस तरह गुड़ाई करने से गेहूँ के पौधे की जड़ों को लंबा होने में मदद मिलती है और वे मिट्टी से ज्यादा पोषण एवं नमी प्राप्त करते हैं।

खड़ी फसल की देखभाल–बुआई के 25 दिन बाद

बुआई के 25 दिनों के बाद दूसरी सिंचाई देना चाहिए, क्योंकि इसके बाद से पौधों में नए कल्ले तेजी से आने शुरु होते हैं और नए कल्ले बनाने के लिए पौधों को अधिक नमी एवं पोषण की जरुरत होगी।

सिंचाई के 2–3 दिन बाद हैंड हो या वीडर से मिट्टी को ढीला करें साथ ही खरपतवार भी निकाल दें। यह करना अति आवश्यक है नही ंतो सिंचाई देने के बाद खेत में खरपतवार भर जायेंगे।

खड़ी फसल की देखभाल बुआई के 40 दिनों के बाद

बुआई के 35 से 40 दिनों के बाद तीसरी सिंचाई देना चाहिए, इसके बाद से पौधे तेजी से बड़े होते हैं साथ ही नए कल्ले भी आते रहते हैं। इसके लिए पौधों को अधिक नमी एवं पोषण की जरुरत होगी। इसलिए सिंचाई के तुरंत बाद 37 किलो ग्राम यूरिया एवं 32 किलो ग्राम पोटाश खाद प्रति हेक्टेयर जमीन के हिसाब से छिड़काव करें। सिंचाई के 2–3 दिन बाद हैंड हो या वीडर से मिट्टी को ढीला करें साथ ही खरपतवार भी निकाल दें। इससे मिट्टी ढ़ीली होगी, जड़ों को हवा मिलेगी और पौधे तेजी से बढ़ेंगे। गेहूँ की फसल में अगली सिंचाई 60, 80 एवं 100 दिनों के अंतराल पर की जाती है। यह समय मिट्टी के प्रकार एवं मौसम पर निर्भर करता है। ध्यान देने की बात यह है कि फूल आने के समय एवं दाना में दूध भरने के समय पानी की कमी नहीं होनी चाहिए नही ंतो उपज में काफी कमी होती है।

स्वी विधि से गेहूँ की उपज

स्वी विधि से अच्छी भूमि में गेहूँ की खेती करने पर 75 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज आसानी से प्राप्त होती है जबकि परंपरागत विधि से अधिकतम उपज 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है जो इस बात का द्योतक है कि स्वी विधि से गेहूँ का उत्पादन किसानों के लिए वास्तव में वरदान है। तो आईये हम भी गेहूँ की खेती स्वी विधि से करके अपने राज्य को धन–धान्य से भरे।

बच्चों को जिम्मेदार बनाती है बागवानी

हर माता–पिता की ख्वाहिश होती है कि उनका बच्चा जिम्मेदार बने। अब इसके लिए मां बाप को ज्यादा मेहनत करने की जरूरत नहीं है। एक नए सर्वे में विशेषज्ञों ने कहा है कि बच्चों को बागवानी के गुर सिखाने से उनमें जिम्मेदारी का भाव आता है और वे शांत स्वभाव के बनते हैं। रॉयल हॉटीकल्चरल सोसाइटी (आरएचएस) की ओर से यह सर्वे किया गया।

सर्वे में शामिल लगभग आधे माता–पिता ने बागवानी करने वाले बच्चों को जिम्मेदार होने की बात स्वीकारी। अध्ययन में शामिल अभिभावकों में से करीब 20 फीसदी ने कहा उनके बच्चों का स्वभाव पहले उग्र था लेकिन बागवानी करने से उनके स्वभाव में नरमी आई।

वहीं 60 फीसदी अभिभावकों ने कहा कि बागवानी करने से बच्चे समझ पाते हैं कि खाना कितनी मेहनत से मिलता जाता है। इससे उनमें भी जिम्मेदारी का भाव पैदा होता है और वे चीजों को गंभीरता से लेने लगते हैं। अन्य 20 फीसदी ने कहा कि बागवानी में बच्चों के दादा–दादी भी उनका साथ देते हैं।

इस तरह बच्चे उनके भी ज्यादा करीब आते है। आरएचएस के डायरेक्टर सू बिग्स ने कहा, बागवानी एक ऐसा गुर है जो बचपन में सीखने पर भी ताउम्र याद रहता है और आगे चलकर भी फायदा पहुंचाता है। अध्ययन के आंकड़ों से यह भी पता चला है कि अपने अभिभावकों की तुलना में आज के बच्चे बागवानी के प्रति ज्यादा रूझान रखते हैं।

गेहूँ की बुआई

thjk fVy Mªhy ls

vukfedk >k
,-d-,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-iz-½

अनाज वाली फसलों में गेहूँ का धान के बाद मध्य प्रदेश में दूसरा स्थान है। मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र का गेहूँ गुणवत्ता में विश्वप्रसिद्ध है। इसका स्वाद अन्य जगहों के गेहूँ से अलग ही है। म.प्र. कुल 3.7 मिलियन हेक्टेयर में गेहूँ की खेती करता है, जिसमें 6.1 मिलियन टन उत्पादन होता है तथा उत्पादकता लगभग 1.6 टन/हेक्टेयर है। जल जमाव वाले क्षेत्रों में समय पर गेहूँ की बुआई करके राज्य में गेहूँ का उत्पादन तथा उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में लेखिका ने ऐसी भूमि जिसमें बहुत दिनों तक नमी बनी रहती है तथा समय पर बुआई नहीं हो पाती, उसमें जीरो–टिल–ड्रिल से गेहूँ की बुआई करके भरपूर उपज प्राप्त करने की अनुशंसा की है।

धान–गेहूँ फसल चक्र में धान की कटाई के बाद गेहूँ की बुआई करने के लिए खेत की तैयारी करनी पड़ती है जिसमें समय, श्रम व ऊर्जा की खपत होती है, साथ ही साथ बुवाई भी पिछड़ जाती है। पंजाब, राजस्थान, हरियाणा व बिहार के सिंचित क्षेत्रों में किसान धान की फसल के कटाई के बाद सीधे गेहूँ बुआई की पद्धति को अपना रहे हैं। इस प्रणाली में धान की कटाई के बाद खेत पर जीरो टिल ड्रिल मशीन द्वारा गेहूँ की बोनी की जा सकती है। सीड ड्रिल की तरह जीरो टिल ड्रिल में कूँड़ खोलने वाले फाल लगे होते हैं जो कि उल्टे 'T' आकार का खांचा बनाता है जिससे कूँड के सतह का क्षेत्रफल कम हो जाता है। इससे कूँड में नमी बनी रहती है और बीज का जमाव अच्छा होता है।

सभी कूँड़ों को खाद बीज प्रदान करने हेतु एक बाक्स इस मशीन पर लगा होता है जिसमें दो भाग होते हैं, एक खाद के लिए एवं दूसरा बीज के लिए। ट्रैक्टर चलित बोनी मशीन के समान ही जीरो टिल ड्रिल कार्य करता है तथा 35 अश्वशक्ति के ट्रैक्टर द्वारा इसका उपयोग किया जा सकता है।

गेहूँ का भरपूर उत्पादन लेने हेतु 30 नवम्बर तक बुआई का उपयुक्त समय होता है। परन्तु मध्य प्रदेश में 50 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र में गेहूँ की बुआई देर से होती है। इस तकनीक को अपनाने के कई फायदों का विवरण निम्नलिखित है–

- नमी युक्त मिट्टी में जहाँ सही नमी के लिए इंतजार करना पड़ता है, वहीं इस प्रणाली से 10–15 दिन पहले ही इसकी बुवाई हो जाती है।
- खास तौर पर जहाँ धान के बाद खेत को तैयार करने की प्रक्रिया में लगभग 6–7 बार खेत पर जाना पड़ता है, वहीं जीरो टिल ड्रिल से एक बार में बुआई हो जाती है।
- ट्रैक्टर समय में लगभग 8–12 घंटे प्रति हे. की कमी आती है, साथ ही साथ 36 लीटर डीज़ल प्रति हे. की बचत भी होती है।
- इस प्रणाली तहत यह पाया गया है कि उत्पादन लागत में 5–10 प्रतिशत की कमी के साथ, पैदावार में 6–10 प्रतिशत बढ़ जाती है।
- देर से बुआई की दशा में अधिकतम गेहूँ छिटकवाँ विधि–से बोया जाता है जिससे सामान्य से अधिक बीज (125–150 कि.ग्राम प्रति हे.) लगता है। जीरो टिलेज से 25–30 कि.ग्राम प्रति हे. बीज की बचत की जा सकती है तथा बीज का जमाव समान रूप में पंक्तियों में होता है।

- भारतीय किसानों ने ज़ीरो टिलेज से गेहूँ की पैदावार में 5–7 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी पाई है।
- सिंचाई पानी में भी 15–30 प्रतिशत की कमी का फायदा दर्ज किया गया है।
- इस विधि से बुआई किये गये खेत में गेहूँ घास कम उगते है क्योंकि खरपतवार के ज्यादातर बीज जुताई न करने के कारण गहराई में ही पड़े रहते हैं और कड़ी भूमि में उन्हें नमी, ऑक्सीजन (हवा) नहीं मिलने के चलते उनका जमाव कम होता है।
- डीज़ल और मजदूरी की कम खपत के कारण प्रति हे. 2000–2500 रुपये की बचत होती है। अतः आर्थिक दृष्टि से भी ज़ीरो टिल ड्रिल का उपयोग अधिक फायदेमंद साबित हो सकता है।

अतः कुल मिलाकर इस तकनीक को अपना कर किसान भाई कम उत्पादन लागत से अधिक उत्पादन करके शुद्ध आय की प्रतिशत मात्रा में बढ़ोतरी कर सकते हैं जिससे उनकी माली हालत सुधरेगी और खुशहाली आ सकेगी। इस मशीन को किसान अपने जिले के कृषि अभियंत्रण संभाग से खरीद सकते हैं। बाज़ार में इसकी कीमत लगभग 50000 रुपये है।

+++

lefdr dhV izcU/ku e

लाल मिर्च की साझेदारी

vk'kqrks'k dqekj ek;] uohu lDlsuk ,oe ehjk mbdS
,-dh-,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-iz-½

भोजन में जब चरपराहट की बात चलती है तो लाल मिर्च का नाम अपने आप जुबान पर आ जाता है। यदि आप चिराग लेकर भी ढूढ़गें तो शायद ही कोई ऐसा आदमी मिले जिसने मिर्च को चखा न हो। हरी मिर्च तो गरीब लोगों की रेडीमेड सब्जी है। भारत में गरीब मजदूर हरी मिर्च तथा नमक के साथ रोटी खाकर काम पर चल पड़ते हैं। सलाद हो या सब्जी, दाल हो या कढ़ी, अचार हो या चटनी, मछली हो या मांस, सभी सभी बिना मिर्च का अधूरा ही रहता है तथा स्वाद फीका पड़ जाता है। मिर्च मसाले की एक मुख्य फसल है। भारतीय पाक कला में मिर्च का उपयोग भोजन को रंगीन, स्वादिष्ट और चटपटा बनाने में किया जाता है। लाल मिर्च का पाउडर चाट, सलाद, पकौड़ा, सूप तथा सॉस आदि को तीता तथा चटपटा बना देता है जो सबके मन को जीत लेता है।

लाल मिर्च में तीखापन कैप्सेसीन नामक रसायन के कारण होता है। लाल सूखी मिर्च में 0.70 प्रतिशत कैप्सेसीन पाई जाती है जिसका उपयोग घमौरी रोधी पाउडर तथा मलहम बनाने में होता है। लाल मिर्च के 100 ग्राम वजन से 128 मिली ग्राम विटामिन–सी मिलती है।

स्वाद के साथ–साथ मिर्च किसानों को धन्ना सेठ भी बनाता है। भारत प्रति वर्ष 2 लाख, 41 हजार टन लाल मिर्च का निर्यात करता है जिससे 2 करोड़ 15 लाख रुपये मूल्य की देश के लिए बहुमूल्य विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। यही कारण है कि मध्य प्रदेश में मिर्च, एक अच्छी नकदी फसल के रूप में किसानों में लोकप्रिय हो चुकी है। मध्य प्रदेश में मिर्च की खेती 45,800 हेक्टेयर भूमि में की जाती है जिससे 9,800 टन लाल मिर्च का उत्पादन होता है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि 17वीं शताब्दी में लाल मिर्च दक्षिण अमेरिका से भारत आई थी लेकिन आज आलम यह है कि भारत में लगभग 7,92,110 हेक्टेयर क्षेत्र में इसकी खेती की होती है जिससे 12 लाख 60 हजार टन उत्पादन होता है। आन्ध्रप्रदेश, माहराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडू ऐसे राज्य हैं जहां 75 प्रतिशत खेती मिर्च की ही की जाती है। इन इलाकों के किसान ज्वार, रागी, कपास, अरंडी तथा मूंगफली की फसल के साथ मिर्च इसे उगाते हैं ताकि उनकी अपनी आवश्यकता की पूर्ति हो सके। अन्य मिर्च उगाने वाले राज्यों में उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, हरियाणा तथा पंजाब मुख्य है। उत्तर पूर्व के प्रदेशों में मिर्च की अत्यन्त तीखी जातियाँ उगाई जाती हैं जिसे बर्ड चिलीज कहते हैं।

लाल मिर्च कीटनाशक के रूप में

लाल मिर्च के भोजन में इस्तेमाल से तो प्रायः सभी परिचित हैं, परन्तु यह बहुत कम लोग जानते हैं कि लाल मिर्च हमारी फसलों की रक्षा भी हानिकारक कीटों से करता है। इसे कीटनाशक की तरह भी प्रयोग में लाया जा सकता है। ऐसा देखा गया है कि एफिड, सूडी तथा झींगुर के आक्रमण को रोकने के लिए मिर्च का घोल अत्यन्त प्रभावकारी होता है।

परन्तु ऐसा नहीं है कि पिसी हुई लाल मिर्च को सीधे ही फसलों पर छिड़क दिया जाये। अन्य कीटनाशकों की तरह इसे कीटनाशक बनाने के लिए सौ ग्राम पीसी हुई लाल मिर्च में एक लीटर पानी डाल कर उसे लगभग 24 घंटों के लिए पड़ा रहने देते हैं। फिर इस घोल को पतले कपड़ से छान लेते हैं और इसमें इतनी ही मात्रा का साबुन घुला पानी मिला देते हैं। साबुन वाले पानी के कारण यह 'कीटनाशक' की तरह पत्तों तथा टहनियों पर चिपक जाता है। हालांकि कुछ किसान लाल मिर्च के पाउडर का छिड़काव भी करते हैं, परन्तु साबुन के इस्तेमाल नहीं करने की वजह से हाथ तथा

आंखें जलने लगती है। और इसका असर भी कम होता है क्योंकि तेज हवा चलने पर मिर्च पाउडर हवा में इधर–उधर फैल जाती है।

भंडारण के दौरान भी लाल मिर्च अनाज को कीड़ों से बचाता है। बस करना केवल इतना है कि अनाज में मिर्च पाउडर मिला दें। मात्रा का अंदाज अनाज के वजन के हिसाब से लगाया जा सकता है। ध्यान रहे कि इस्तेमाल करते समय अनाज को अच्छी प्रकार धो लें अन्यथा सारे अनाज में मिर्च का स्वाद आता रहेगा।

वैज्ञानिकों के निरन्तर अध्ययनों से पता चला है कि मिर्च को औषधि के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। कटिवात (लंबागो) और गठिया में मिर्च से बनी दवाएं फायदा करती हैं जहां मिर्च एक टॉनिक की तरह काम करती है।

- लाल मिर्च की कैप्सेसीन से अनेक दवायें बनाई जाती है जिनका व्यवहार ठण्डक, गला की खराबी तथा छाती के जकड़न में होता है। एक कहावत है कि सबसे उपयोगी लाल मिर्च, परन्तु उससे उपयोगी हरी मिर्च और उससे भी अधिक उपयोगी काली मिर्च होती है।
- लाल मिर्च की कैप्सेसीन का इस्तेमाल घमौरी रोधक पाउडर तथा मलहम बनाने में किया जाता है।
- शिमला मिर्च से बना पाउडर कढी, आलू, अंडा, पनीर जैसे हल्के रंग वाले भोज्य पदार्थों को रंगने में तथा आकर्षक बनाने में किया जाता है।
- मिर्च खाने से मुँह में लार ग्रंथियों की सक्रियता बढ़ जाने से अधिक एमाईलेज इन्जाइम का उत्पादन बढ़ जाता है जिससे स्टार्च बाहुल्य भोजन का पाचन सरलता से हो जाता है।
- सौ ग्राम हरी मिर्च खाने पर 50 मिली ग्राम विटामिन सी की प्राप्ति होती है जो हमारे शरीर में रोग रोधिता की क्षमता को बढ़ाता है।
- लाल मिर्च के अर्क का व्यवहार अदरक से बने बीयर में किया जाता है।
- लाल मिर्च के कैप्सेसीन से दर्द निवारक मलहम, घाव पर बांधने की पट्टी तथा दाँत दर्द की दवा बनाई जाती है।
- लाल मिर्च का नियमित सेवन सर्दी, जुकाम से हमारी रक्षा करता है।

पोषण की दृष्टि से भी मिर्च की विशेष अहमियत है। इसमें 1.2 ग्राम प्रोटीन, 9 मिली ग्राम कैल्शियम, 22 मिली. ग्राम फॉस्फोरस तथा 0.7 मिली. ग्राम लोहा तथा 128 मिली ग्राम विटामिन सी तथा 900 अंतर्राष्ट्रीय इकाई कैरोटीन पाया जाता है। विटामिन सी के लिए मशहूर संतरा, नीबू वगैरह से भी ज्यादा मिर्च धनी है। इस खोज के लिए हंगरी के वैज्ञानिक सेट ज्योजी को सन् 1937 में नोबेल पुरस्कार मिला था।

fVdkÅ df"k rFkk xkeh.k lef) dk vk/kkj

केंचुआ

jek 'kek ,oe vk'kqrks"k dqekj ek;l
,-dk-,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-iz-½

राष्ट्र कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने किसान को सारे जगत का पिता ही कह डाला है। कितना पुण्य आत्मा हैं, वह किसान। जिसका उपजाया हुआ अन्न मानव, जीव–जन्तु पशु–पक्षियां, चोर, बदमाश, पापी साधु सभी खाते हैं। ऐसे पुण्य आत्मा किसान को प्रकृति ने भी दो सच्चे मित्रों से नवाजा है जो जीवन पर्यन्त किसान से भी अधिक मेहनत करके किसानों का प्रत्यक्ष रूप से मदद करते हैं। इस सच्चे मित्रों में एक मित्र केचुआ तथा दूसरा मित्र मधुमक्खी है। केचुआ की कृषि में योगदान प्रस्तुत लेख की विषय वस्तु है।

केंचुए भूमि की उर्वरता को बढ़ाने के साथ–साथ कई कीटनाशकों के दुष्प्रभावों को कम करते हैं। मरने के बाद भी केंचुए के शरीर से निकलने वाला नाइट्रोजन भूमि को और भी ज्यादा उपजाऊ बना देता है। केंचुओं की उपयोगिता को देखते हुए कृषि वैज्ञानिक अब इसकी विभिन्न प्रजातियां विकसित कर चुके हैं। पोलैंड की 'लेमबोगो' प्रजाति द्वारा उत्पादित जैविक ह्यूमस भूमि को उर्वरा बनाने में अनोखी गुणवत्ता वाला साबित हुआ है। दो टन ह्यूमस 40 टन खाद के बराबर होता है।

जानकारी के मुताबिक केंचुए के मल में साधारण मिट्टी की तुलना में डेढ़ गुना चूना, तीन गुना मैग्नीशियम, 5 गुना नाइट्रोजन, साढ़े सात गुना फास्फोरस और 11 पोटाशियम होता है। इसे मल से मिट्टी में उपयोगी बैक्टीरिया की वृद्धि की दर बढ़ जाती है।

केंचुए की करीब 7000 प्रजातियां पायी जाती हैं। इनमें से करीब 40 प्रजातियां भारत में पायी जाती हैं। केंचुए अपने नुकीले सिर से बिल खोदते है और मिट्टी खाते है। केंचुआ प्रतिदिन 16 से 20 गोल छिद्र बनाता है। इस प्रकार भूमि में रोजाना अनगिनत छिद्र बनते रहते हैं। जिससे भूमि में वायु संचार खूब होता है।

केंचुआ मिट्टी में पाए जाने वाले पोषक तत्वों को अपनी आहार नाल द्वारा अवशोषितकर लेता और हजम न होने वाले हिस्से का गुदा द्वार से लघु गोलियों (फेरोटिमा) के रूप में बाहर निकाल देता है। इसकी लम्बाई करीब 5 सेंटीमीटर होती है। केंचुए के मल के ढेर को कास्टिंग्स कहते हैं।

केंचुए मिट्टी में उपलब्ध कार्बनिक और खनिज पदार्थों को ग्रहण करके मिट्टी में वायु संचार को बढ़ाते है। केंचुओं द्वारा ग्रहण किए गए भोजन के कुछ अंश इनके जीवित रहने के लिए उपयोग में लाये जाते हैं। शेष भाग इनकी आहार नाल में अच्छी तरह मिल जाते हैं। केंचुए द्वारा छोड़ा गया मूत्र अमोनिया से भरपूर रहता है जो भूमि में रहने वाले जीवाणुओं के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करते हैं। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार केंचुए के मल में 40 फीसदी यूरिया, 20 फीसदी अमोनिया और 40 फीसदी अमीनों अम्ल तथा अन्य पदार्थ उपलब्ध रहते है। केंचुए अकार्बनिक और खनिज पदार्थ को भूमि पर इधर–उधर स्थानांतरित करते हैं तथा भूमि की उर्वरता बढ़ाकर उसकी भौतिक दशा में सुधार करते हैं। केंचुओं के भूमि प्रवेश से अनेक छिद्रों का निर्माध होता है जिनके द्वारा पानी का संचरण अच्छा होता है।

केंचुए नमी युक्त स्थानों पर मसलन नदियों, बागीचों में पाए जाते है। ये अच्छी वायु संचरण वाली मिट्टी में रहना गवारा करते हैं क्योंकि इन्हें जीवित रहने के लिए वातावरण से ऑक्सीजन की तलब होती है। केंचुए पानी में काफी समय तक डूबे रहकर भी जीवित रह सकते है। इनकी कई प्रजातियां ऑक्सीजन के बिना भी कई घंटों तक जिन्दा रह सकती

है। केंचुए भूमि की ऊपरी सतह से लेकर 30 से 50 सेंटीमीटर की गहराई तक पाए जाते हैं। सूखे और गर्म वातावरण की अवस्था में ये जमीन की और ज्यादा गहराई में जाकर अपने को गेंद के आकार में बना कर जीवित रहते हैं। केंचुए प्रकाश के प्रति अति संवेदनशील होते हैं। ये उजाले में इधर–उधर भागने तथा छिपने की कोशिश करते हैं। केंचुए की कुछ प्रजातियां सड़ी हुई लकड़ी, पेड़ की छाल या पत्तियों पर गोल घेरा बनाकर जंगलों में रहती हैं।

कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार केंचुए द्वारा प्रतिवर्ष 4 हजार से 9 हजार किलो ग्राम मिट्टी प्रति हेक्टेयर जमीन की निचली सतह से ऊपरी सतह पर लायी जाती है। यदि इस मिट्टी को एक हेक्टेयर क्षेत्र में फैला दिया जाए तो दस वर्षों में मिट्टी की 5 सेंटीमीटर मोटी तह लग सकती है। लिहाजा यह कहना गलत नहीं होगा कि केंचुए के पहले से ही मिट्टी की जुताई कर रहे हैं।

केंचुए पौधों को नाइट्रोजन उपलब्ध कराने की अहम भूमिका निभाते है। यह मिट्टी के साथ–साथ वातारण में उपस्थित नाइट्रोजन लेते है। यह मिट्टी केंचुए के पाचन तंत्र में शोधित मल के रूप में बाहर आती है। इसमें नाईट्रोजन की प्रचुरता रहती है। केंचुए अपने मल को पौधों की जड़ों के पास फैलाते हैं जिससे पौधों की आसानी से नाइट्राजन उपलब्ध हो जाता है।

<u>उत्तम जीवकोपार्जन का स्त्रोता–वर्मी कम्पोस्ट तथा वर्मी वास</u>

अपने देश में आज–कल वर्मी कम्पोस्ट तथा वर्मी वास तैयार करने का कार्य लघु, सीमान्त तथा बड़े किसानों एवम् महिलाओं के स्वयं सेवी समूहों में काफी लोकप्रियता हासिल कर चुका है जिसमें लाखों लोगों को रोजगार प्राप्त है। इस लिए केचुआ की मदद से हमारी कृषि टिकाऊ होगी एवम् हमारे किसान समृद्ध होगें, और उनके चेहरे पर मुस्कराहट दिखेगी। अतः यह कहना कि केचुआ हमारी कृषि को टिकाऊ बनाता है जिससे ग्रामीण समृद्धि आती है, निर्विवाद है, अक्षरसः सत्य है।

+++

मध्य प्रदेश में लहसुन की व्यावसायिक खेती का आर्थिक विश्लेषण

lqjs'k dqekj ;kno] vk'kqrks"k dqekj ekS;Z ,oa vfHk"ksd dqekj x<s
,-dh-,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-iz-½

लहसुन एक लोकप्रिय मसाला फसल है। इसमें अनेक अद्भुत औषधीय गुण है। लहसुन खाने वाले को उच्च रक्त चाप, हृदय घात तथा मधुमेह का रोग छूता ही नहीं। पहले इसमें आने वाली गंध की वजह से लहसुन को बहुत कम लोग खाना पंसद करते थे, परन्तु इसके अनेक औषधीय गुणों की जानकारी होने से अब लहसुन का इस्तेमाल सभी घरों में अधिकाधिक मात्रा में होने लगा है। जिसके कारण बाजार में इसकी माँग सालो भर बनी रहती है, तथा यह 100–150 रु. प्रति किलो से भी अधिक मूल्य पर बिकता है। मध्य प्रदेश में यदि लहसुन की उन्नत किस्मों की खेती वैज्ञानिक तौर–तरीके से की जाय, तो इससे और अधिक शुद्ध आमदनी प्राप्त हो सकती है। प्रस्तुत लेख में लेखकों ने मध्य प्रदेश में लहुसन की व्यावसायिक खेती का आर्थिक विश्लेषण द्वारा सिद्ध किया है, कि अधिक आमदनी हेतु रबी में लहुसन की खेती अत्यन्त लाभप्रद है।

लहसुन का भारत तथा म.प्र. में वितरण

लहसुन की खेती भारत के गुजरात, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र आदि राज्यों में बड़े पैमाने पर की जाती है, तथा मध्य प्रदेश भी भारत का सबसे बड़ा लहसुन उत्पादक राज्य है। यदि वैज्ञानिक खेती का तौर–तरीका किसानों तक पहुंचाया जाये, तो, और अधिक उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

लहसुन की भरपूर उपज के लिए उत्पादन के विभिन्न अवयवों जैसे लहसुन की उन्नत किस्में, खाद, उर्वरक, मृदा की किस्म, बोआई के तौर तरीकों का विशेष ध्यान देना होगा, तभी लहसुन की अच्छी उपज के साथ अच्छी आमदनी की प्राप्ति होगी।

लहसुन की उन्नत किस्में

यदि लहसुन की वैज्ञानिक खेती करनी है, तो यमुना, गोदावरी, पन्तलोहित, एग्री फाऊंड पार्वती, सोलन सलेक्शन–1 में से किसी एक को प्राथमिकता दें।

भूमि का चुनाव तथा उसकी तैयारी

लहसुन की खेती के लिए मध्यम काली मिट्टी से लेकर अच्छी जल निकास वाली दोमट मिट्टी जिसमें लहसुन की मात्रा अच्छी हो चुन सकते हैं। ऐसी मिट्टी जिसमें वर्षा होने पर जल जमाव होता है, नहीं चुनें। भूमि को एक बार 10–15 से. मी. की गहराई तक अच्छी प्रकार जुताई करके पाटा चलाकर मिट्टी को खूब भुरभुरी परन्तु समतल बना, खरपतवार निकालकर, एवं सिंचाई के सुविधानुसार क्यारियाँ और नालियाँ बनालें।

खाद तथा उर्वरक

जुताई के समय 20–25 टन अच्छी सड़ी गोबर की खाद मिलायें तथा बाद में सिंगल सुपर फॉस्फेट 60 किलो, म्यूरेट ऑफ पोटाश 60 किलो, तथा यूरिया 100 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से ड़ालकर अच्छी प्रकार मिट्टी में मिला दें।

बोआई का समय तथा बीजदर

लहसुन को अगस्त तथा सितम्बर में बोया जाता है। तथा पहाड़ी क्षेत्रों में मार्च–अप्रैल में बोआई करते हैं। लहसुन

का प्रवर्धन जवा द्वारा किया जाता है। एक हेक्टेयर भूमि में लहसुन बोने के लिए 5 से 6 क्विंटल जवा की आवश्यकता होती है। बोने के पहले जवा को बाविस्टीन नामक दवा से उपचारित कर लेना चाहिए। एक किलो जवा में 3 ग्राम बाविस्टीन मिलाना चाहिए।

बोआई की विधि

लहसुन की बोआई सदैव क्यारियों में करते हैं। खेत में छोटे–छोटे आयताकार गहरी क्यारियों का निर्माण करके उसमें जवा को 5 से 7.5 से.मी. की गहराई पर, 15 से.मी. की दूरी पर वनी पंक्तियों में बोआई करते हैं, तथा ऊपर से पतली मिट्टी की परत द्वारा ढ़क देते हैं और एक हल्की सिंचाई कर देते हैं।

सिंचाई तथा निराई–गुड़ाई एवं कंदो की खुदाई

लहसुन की अधिक ऊपज प्राप्त करने के लिए सिंचाई का विशेष महत्व है। लहसुन में पहली सिंचाई जवा की बोआई के बाद, तथा इसके पश्चात् दो–तीन सिंचाई आवश्यकतानुसार 10–15 दिनों के अन्तराल पर करें। लहसुन में आखरी सिंचाई जब कन्द पक जाये तब खुदाई के 7–8 दिन पहले करें। लहसुन में पहली निराई–गुड़ाई खुरपी की सहायता से जवा की बोआई के एक महीने पश्चात् तथा दूसरी निराई–गुड़ाई, पहली निराई–गुड़ाई के एक महीने पश्चात् करते हैं एवम् खेत को खर–पतवार रहित रखना लाभप्रद होता है।

लहसुन के कन्दों की खुदाई, बोआई के लगभग 180 दिनों बाद जब कन्द पक जाये तब करनी चाहिए। लहसुन की फसल लगभग छः महीनों में तैयार हो जाती है।

ऊपज तथा आय–व्यय का लेखा–जोखा

खेती के वैज्ञानिक तौर–तरीके से लहसुन की औसत ऊपज कम से कम 150 क्विंटल प्रति हेक्टेयर आसानी से प्राप्त हो जाती है। यह उपज उन्नत किस्मों तथा उचित समय पर बोआई और फसल प्रबन्धन पर निर्भर करती है। यदि 150 क्विंटल उपज को 80 रु. प्रति किलो के दर से बेचने पर कुल एक फसल से 40,715 रु. को घटाने पर छः महीने में एक फसल से 11,59,285 रु. की शुद्ध आय प्राप्त होगी। जो अन्य किसी फसल से सम्भव नहीं है।

लहसुन की खेती का आर्थिक विश्लेषण
(फसल अवधि – 180 दिन)

क्र.	खर्च का मद	प्रति इकाई खर्च	कुल खर्च
1	भूमि का लगान (छः महीना के लिए)	500 / महीना	3,000
2	भूमि की तैयारी (तीन जुताई)	700 / घंटे	2,100
3	बीजदर (6 क्विंटल / हेक्टेयर)	150 / किलो	90,000
4	बीज उपचार (1.8 किलो बाविस्टीन)	500रु. / कि. ग्राम	900 / –
5	गोबर की खाद (200 क्विंटल / हेक्टेयर)	100 / क्विंटल	2,000
6	उर्वरक –		
	यूरिया – 100 किलो / हेक्टेयर	रु. 7 / किलो	700 / –
	सिंगल सुपर फॉस्फेट–60 किलो / हेक्टेयर	रु. 7.25 / किलो	435 / –
	म्यूरेट ऑफ पोटाश – 60 किलो / हेक्टेयर	रु. 18 / किलो	1,080 / –
7	बीज की बोआई (20 मजदूर)	रु. 150 / मजदूर	3,000 / –
8	सिंचाई (5 सिंचाई)	रु. 400 / सिंचाई	2,000 / –
9	खरपतवार नियंत्रण (20 मजदूर)	रु. 150 / मजदूर	3,000 / –
10	कदों की खुदाई व सफाई एवं विपणन (20 मजदूर)	रु. 150 / मजदूर	3,000 / –
11	विविध खर्च	रु. 1,500 / –	1,500 / –
	कुल उत्पादन खर्च का योग		11,2,715 / –

कुल उत्पादन खर्च प्रति हेक्टेयर रु. 11,2,715 / –

* कुल ऊपज प्रति हेक्टेयर – 150 क्विंटल
* कुल आमदनी प्रति हेक्टेयर – रु. 12,00,000 / –
* शुद्ध आमदनी प्रति हेक्टेयर – रु. 12,000,00 – 11,2,715 / –
  = रु. 10,87,285 / –
* शुद्ध आमदनी प्रतिदिन / हेक्टेयर – रु. 7,248 / –

मध्यप्रदेश में चने की वैज्ञानिक खेती

vQlkfjdk vkteh [kku ,oe /khjUnz iVsy pracinh
,-d-,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-i-½

दलहनी फसलों के उत्पादन में मध्य प्रदेश का प्रमुख स्थान है। राज्य में लगभग 12.50 लाख हे0 क्षेत्र में चने की खेती होती है तथा वर्ष 1998—99 में 10.50 लाख टन चने का उत्पादन हुआ। नई तकनीकी एवं उन्नतशील प्रजातियो को अपनाकर किसान चने को उत्पादन बढ़ा सकते हैं। चना उत्पादन की उन्नत एवं नूतन तकनीकी का विवरण निम्नवत् है :

उन्नतशील प्रजातियां

मध्यप्रदेश में से किसी का किसान चुनाव कर सकते है।

(अ) देशी प्रजातियां : राधे, जे.जी. 315, विजय, पूसा 256, जे.जी. 74, प्रगति,

(ब) काबुली : के.ए.के. 2, आई.सी.सी.सी.32, पूसा— 1053, एल—550, के.4.

(स) देर से बाई जाने वाली : पूसा 372, उदय

बीजोपचार

राइजोबियम कल्चर का एक पैकेट 10 कि0ग्रा बीज के लिए पर्याप्त होता है। 50 ग्राम गुड़ अथवा चीनी को आधा लीटर पानी में घोल दिया जाता है। घोल को उबालकर ठंडा कर लेते हैं। ठंडा हो जाने पर इस घोल में एक पैकिट राइजोबियम कल्चर मिला दिया जाता है। बाल्टी में 10 कि0ग्रा0 बीज डालकर अच्छी प्रकार मिला दिया जाता है ताकि सभी बीजों को 8—10 घंटे तक छाया में फैला देते हैं उपचारित बीज को धूप में नहीं सुखाना चाहिए। बीज उपाचार दोपहर के बाद करना चाहिए ताकि बीज शाम को अथवा दूसरे दिन बोया जा सके।

बीज षोधन

बीज जनित रोगों से बचाव के लिए थाइरम 2 ग्राम् कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति कि0ग्रा0 बीज अथवा थाइरम 3 ग्राम प्रति कि0ग्रा0 बीज अथवा कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम प्रति कि0ग्रा0 बीज की दर से शोधित कर लेना चाहिए। बीज शोधन कल्चर से उपचारित करने के 2—3 दिन पूर्व करना चाहिए।

बुवाई

असिंचित क्षेत्र – अक्टूबर से द्वितीय एवं तृतीय सप्ताह तक

सिंचित क्षेत्र – नवम्बर के द्वितीय सप्ताह तक।

पछेती बुआई – दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक

बीज दर

असिंचित क्षेत्र – 70—80 कि0ग्रा0 / हे0

सिंचित क्षेत्र – 60—70 कि0ग्रा0 / हे0

पछेती बुआई – 80—100 कि0ग्रा0 / हे0

पंक्ति से पंक्ति की दूरी

सामयिक बुआई : 30 से0मी0

पछेती बुआई : 25 से0मी0

पौधे से पौधे की दूरी

10 से0मी0

फसल प्रणाली

चने की खेती एकल अथवा अंतः फसल के रूप में की जाती है। अंतः फसल प्रणाली में चने को सरसों (6 लाइन चना : 2 लाइन सरसों) अथवा अलसी (4 लाइन चना : 1 लाइन अलसी) अथवा जो (4 लाइन चना : 2 लाइन जौ) के साथ में उगाया जा सकता है। बारानी क्षेत्रों में अंतः फसल प्रणाली अधिक टिकाऊ तथा लाभप्रद सिद्ध हुयी है।

उर्वरक

15–20 कि0ग्रा0 नत्रजन, 40–50 कि0ग्रा0 फास्फोरस, 20 कि0ग्रा0 पोटाश तथा 20 कि0ग्रा0 गंधक प्रति हे0 की संस्तुति की जाती है। उपरोक्त मात्रा की पूर्ति 100 कि0ग्रा0 डी.ए.पी., 33 कि0ग्रा0 म्यूरेट ऑफ पोटाश व 200 कि0ग्रा0 जिप्सम प्रति हे0 प्रयोग करने से प्राप्त की जा सकती है। जिन क्षेत्रों में जस्ता की कमी हो, वहाँ 15–20 कि0ग्रा0 जिन्क सल्फेट/हे0 बुआई के समय प्रयोग करें।

सिंचाई

भारी चिकनी भूमि में प्रायः सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। इस तरह की भूमि में फलियों में दाने बनते समय बौछारी सिंचाई तथा दोमट/हल्की दोमट भूमि में दो सिंचाई से अच्छी उपज प्राप्त होती है। प्रथम सिंचाई बुआई के 45–60 दिन बाद, फली आने के पहले, तथा द्वितीय – फलियों में दाना बनते समय करें।

खरपतवार नियंत्रण

बुआई के तुरन्त बाद, 4–5 ली0 स्टाम्प खरपतवार नाशी रसायन का छिड़काव करें अथवा बुआई के 25–30 दिन बाद एक निकाई गुड़ाई कर दें। आवश्यकता पड़ने पर दूसरी निकाई 45–60 दिन बाद करें। पहली सिंचाई के बाद ओट आने पर वायु संचार के लिए हल्की गुड़ाई पुनः करें।

कीट नियंत्रण

फलीछेदक की रोकथाम के लिए 0.07% इण्डोसल्फालन 35 ई.सी. (2 मिली प्रति लीटर पानी), मोनाक्रोटोफास 40 ई.सी. 0.04% (1 मिली प्रति लीटर पानी), फनवैलरेट 0.004(1 मिली प्रति लीटर पानी) (0.8 मिली प्रति लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करें। एक हेक्टेयर फसल के लिए 400–500 लीटर घोल पर्याप्त होगा। बरानी क्षेत्रों में जहाँ पर पानी की कमी होती है वहाँ मैलाथियान 5% धूल अथवा फनवैलरेट 0.2% धूल का भुरकाव 25 किलो प्रति हे0 की दर से प्रभावकारी होता है।

एक से दो गिडार प्रति मीटर प्रति पंक्ति दिखाई पड़ने पर कीटनाशी का छिड़काव शुरु कर देना चाहिए। सामान्यतया एक या दो छिड़काव की आवश्यकता पड़ती है। आसानी से उपलब्ध होने पर एन.पी.वी का 250 गिडार समतुल्य 400–500 लीटर पानी में घोल का प्रयोग कीटनाशी के स्थान पर करें।

कटाई तथा भण्डारण

फलियाँ पक जायें तो कटाई करके मड़ाई कर लेना चाहिए। दानों को भलीभांति सुखाने के बाद भण्डारण करना चाहिए।

उपज

20–25 कुन्तल/हे0।

दलहनी फसलों में समेकित कीट प्रबंध

uohu lDlsuk ,oe vk'kqrks"k dqekj ekS;Z
,-ds-,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-iz-½

विश्व में, भारत दलहन का सर्वाधिक उत्पादन करने वाला देश है जहाँ चना, मटर, मसूर, राजमा, खेसारी, मूँग, उर्द लोबिया, अरहर, मोथ तथा कुल्थी की खेती होती है। मध्य प्रदेश में रबी में चना, मटर और मसूर की खेती बड़े पैमाने पर होती है परन्तु इन फसलों की उत्पादकता काफी कम है जिससे देश में कुल दाल का उत्पादन अत्यन्त उपलब्धता कम है। सन् 1951 में दाल की प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपलब्धता 60.7 ग्राम की जो जनसंख्या के वृद्धि के कारण अब केवल 38 ग्राम रह गई। इस कमी को पूर्ति के दो मुख्य उपाय है। एक तो दलहन की उन्नत किस्मों की वैज्ञानिक तौर–तरीके से खेती की जाये और दूसरी उपाय यह है कि कीड़ों–मकोड़ों से होने वाली फसल की उपज की कमी को रोका जाये। इसके लिए हमें दलहनी फसलों में समेकित कीट प्रबन्धन पर विशेष बल देना होगा जो इस लेख की विषय वस्तु है :–

<u>दलहनी फसलों के प्रमुख कीट</u>

(1) कजरा कीट : इसका आक्रमण नवम्बर से जनवरी तक मुख्यरूप से चना, मटर, एवं मसूर के पौधे पर होता है। यह कीड़ा चिकना, चम्बा तथा गहरे भूरे रंग का होता है, जो रात में अंकुरित बीज तथा नवजात पोधे के सतह पर से काटकर गिरा देता है। भीषण आक्रमण होने पर पूरी फसल बर्वाद हो जाती है। दिन में यह कीड़ा मिट्टी के नीचे छिपा रहता है। सान्ध्या होते ही बाहर निकल कर क्षति करता है। अधिक आक्रमण की स्थिति में 60–70% फसल बर्वाद हो जाती है। कभी–कभी दोबारा बुवाई करनी पड़ती है।

(2) जाल कीट या लूसर्न कीट : यह कीड़ा मुख्य रूप से मसूर के पौधे को नुकसान करता है। इसका पिल्लू छोटे आकार का लम्बा, पतला हल्के रंग का होता है। जिसका पिछला भाग क्रमशः पतला होता है। मसूर के पौधे को प्रारम्भिक अवस्था में नुकशान करता है। यह पौधे को महीन धागे से उपरी भाग को बाँध कर उसके फैलाव को कम कर देता है तथा अन्दर ही अन्दर पत्तियों की मुलायम भाग हरियाली को चाटता है। इसके चलते पौधे अस्वस्थ नजर आते हैं। तथा पत्तियां सफेद दिखती है। अधिक आक्रमण की स्थिति में पौधे सूख जाते है।

(3) फली छेदक कीट (हेलियोथीस कीड़ा) : अधिकतर दलहनी फसलों में इस कीट का आक्रमण नवम्बर माह से आरंभ हो जाता है। और फली लगने पर आक्रमण तेज हो जाता है। यह कीट चना तथा अरहर की फसल को इससे काफी क्षति होती है। लगभग 1.5 इंच लम्बा यह कीट हरा धारीधार होता है। कभी–कभी इसके शरीर पर रोयें भी होते हैं। प्रारंभ में यह कीट फली के अभाव में मुलायम पत्तियों को खाता है तथा फली जम जाने पर उसमें छेद कर दाने को खाता है। इस कीट का पिल्लू फली को छेदकर अपने छेदकर अपने शरीर के कुछ भाग को अन्दर घुसा कर दाने को खाता है। इस अवस्था में फसल को काफी क्षति होती है। इसका प्रौढ़ पीलापन लिये हुए भूरे रंग का होता है। एक पिल्लू प्यूपा तक बदलने तक 30–40 कलियों को खाता हैं। इस कीट का प्रकोप नवम्बर से अप्रैल तक चना, अरहर तथा मटर की फसल पर बना रहता है।

(4) लाही कीट : कीट से मसूर, मटर एवं खेसारी की फसल को काफी नुकशान पहुँचता है। यह हल्के हरे रंग का या काले रंग का मुलायम कीट है। यह समूह में रहता है। यह पंखहीन एवं पंखयुक्त दोनों दो प्रकार का होता है। पौधे की तथा पत्तियों को एवं अग्रभाग के मुलायम हिस्से पर समूह में चिपक कर निरंतर उसके रस को चूसते रहता है।

(5) मटर की तना की मक्खी : इस कीट के पिल्लू ही मटर को नुकशान पहुँचाते हैं। पूर्ण विकसित पिल्लू लगभग

0.8 मी.मी. लम्बा और 0.2 मी.मी. चौड़ा हल्के भूरे रंग का होता है। जबकि प्रौढ़ कीट काफी चमकदार मक्खी होती है। और इसकी लम्बाई लगभग 2–3 मी.मी. तक की होती है। इसके पिल्लू पत्तियों में सुरंग बनकर पौधे के विभिन्न शाखाओं के उपरी भाग से तने में पहुँच जाते हैं और उसको अन्दर ही अन्दर खाकर सुरंभ बना देते हैं। कुछ पिल्लू पौधे को ऊपर की ओर तथा कुछ नीचे जड़ों में प्रवेश कर जाते हैं।

दलहनी फसलों के प्रमुख रोग

(1) उखटा बीमारी : यह एक फफूंद जनित रोग है, जो खेत में फसल नहीं रहने पर भी सुशूप्ता अवस्था में पड़ा रहता है। अनुकुल वातावरण एवं उपयुक्त पौधा मिलते ही फसल प्रभावित होती है। अंकुरण से फली लगने तक जमीन में पर्याप्त नमी रहने पर भी पौधे पीले पड़कर मुरझाा जाते हैं।

(2) हरदा बीमारी (रस्ट) : इससे मुख्य रूप से चना एवं मसूर की फसल प्रभावित होती है। नम एवं ठंढे मौसम में इसका प्रकोप अधिक होता है। फसल पर रोग का लक्षण जनवरी के अंत में या फरवरी माह में दिखाई देने लगता है। पत्तियों के निचली सतह पर छोटे–छोटे गोल या अण्डाकार हल्के गहरे भूरे रंग के उभरे धब्बे बन जाते हैं। जो फूटकर चूर्ण हो जाते है।

(3) मृदरोमिल रोग (पाउड्री मिलड्यू): यह मटर की फसल को नुकशान करता है। इस रोग के आक्रमण से शुरू में पत्तियों की उपरी सतह पर फंफूद के सफेद चूर्ण जम जाते है। बाद में अनुकूल मौसम में पूरे पौधे पर छा जाता है। आक्रांत पौधा बाद में पीला पड़कर, काला होकर सूख जाता है। मटर की फसल को इससे काफी क्षति होती है।

(4) तुलासिता रोग (डाउनी–मिलड्यू) : इस रोम से खेसारी एवं मटर की फसल मुख्य रूप से प्रभावित होती है। इसमें पत्तियों की निचली सतह पर लगभग उसके रंग का सफेद फफूंद का जमाव जगह–जगह पर होती हैं। जिसके ठीक ऊपर पत्ती के ऊपर सतह पर पीला धब्बा नजर आता है। भीषण आक्रमण होने पर सम्पूर्ण पौधों पर फफूंद फैल जाता है और अंत में पौधे मर जाते हैं।

दलहन फसलों में समेकित कीट प्रबंधन

(1) जिस खेत में दलहनी फसलों की खेती करनी है उस खेत में पूर्व में खेती किये गये फसल डठंल एवं खरपतवार को अच्छी तरह साफ रखें। इससे बीमारी एवं कीड़े के प्रसारण में किसी तरह का सहयोग भी मिलता है।

(2) कृषि विभाग द्वारा अनुशासित दलहन फसलों की प्रभेद लगायें।

चना के लिए – सी. 235, पी.256, पी 267, पी. 240, पी.जी. 114, गौरव जे.पी.75, एवं जे.पी. 23 मटर के लिए – अपर्णा, रचना, आजाद, वौनवीले, पंत वी.5 तथा मसूर के लिए – के.75, अरूण, पी.एन.639, एल. 9–12, पूसा–1, पूसा–2 किस्मों को प्राथमिकता देना चाहिए।

(3) गर्मी की जुताई कर खेत को खुला छोड़ने से फायदा कम होता है। मिट्टी जनित कीट एवं रोगों का नाश होता है। साथ ही मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ती है।

(4) हमेशा फसल चक्र का व्यवहार करना अतिउत्तम है।

(5) चना के साथ धनिया, की मिलवा खेती करने से चना पर फली छेदक कीड़े का प्रकोप कम होता है।

(6) स्वस्थ बीज का चुनाव कर बुवाई करनी चाहिए।

(7) मिट्टी जनित कीड़े तथा, रोग से बचने के लिए बीज को पहले क्लोरोपाइरीफाक नामक तरल दवा का 300 मिली लीटर 5 लीटर पानी में घोलकर एक क्विंटल दलहनी बीज को उसमें डालकर उपचारिक करें। उसके 6–8 घण्टे बाद पुनः 2–3 ग्राम कैप्टन या थीरम नामक दवा को प्रति किलो बीज में मिला दें। पुनः उसके 6–8 घण्टे बाद संबंधित बीज को राईसोबियम कल्चर से उपचारित कर बोने से उसमें नत्रजन इकट्ठा करने वाली अधिक से अधिक गांठ बनती है।

(8) दलहनी फसलों की बुवाई अक्टूबर माह में, भूमि में समुचित नमी रहने पर ही करनी चाहिए।

(9) विलम्ब से बुवाई करने पर फफूंद रोग और हरदा रोग का प्रकोप ज्यादा होता है।

(10) पौधों से पौधों की दूरी 30 से. से बढ़ाकर 60 से मी. रखना ज्यादा उपयुक्त है।

(11) अधिक सिंचाई से या नमी की अधिकता से ग्रेमोल्ड नामक झुलसा रोग बढ़ता है अतः संतुलित सिंचाई करनी चाहिए।

(12) बुआई के 30–35 दिनों बाद एक बार खुर्पी से निकाई–गुड़ाई करने से अधिकतर खरपतवार नष्ट भी हो जाते हैं तथा खेत में नमी बनी रहती है।

(13) प्राकृतिक प्रकोप जैसे तेज हवा, तेज वर्षा तथा कड़ी धूप से भी अधिकतर कीड़े मर जाते हैं।

(14) सप्ताह में कम से कम दो बार खेत का सर्वेक्षण करना चाहिए क्योंकि इससे खेत में मित्र एवं शत्रु कीट की पहचान एवं संख्या का पता चलते रहता है। मित्र कीट, शत्रु कीट को खाकर उनकी संख्या को कम करते रहते है।

(15) खेतों में झाड़ीनुमा टहनियों को जगह–जगह पर गाड़ देने से कीट भक्षी–पक्षी जैसे वगुला, मैना, गारैया, आदि इन पर बैठते हैं तथा शत्रु कीटों का भक्षण करते रहते हैं। अतः इन पक्षियों को बढ़ाव देना चाहिए।

(16) चना के खेत में उन फली छेदक इल्लियों को जो उल्टा लटके हों उनको चुनवाकर खरल में पिसवा दें। ये इल्लियां एन.पी.वी. वायरस से ग्रसित रहते हैं। इनकी यही पहचान है। 500 इल्लियां जो ग्रसित हो, का पिसवाकर 1000 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से फली छेदकर इल्ली एन.पी.वी. से ग्रसित होकर मर जाते हैं। न्यूक्लीयर पोलीहेड्रोसिम वायरस का छिड़काव जनवरी के अंतिम सप्ताह से फरवरी के प्रथम सप्ताह तक जब तापक्रम 10–20 डिग्री से हो तो करना उपयुक्त होता है। इसमें प्रोपीनोफाफस दवा मिला देने से अच्छा परिणाम होता है।

(17) फली–छेदक प्रौढ़ नरों को फरोमेनट्रेप द्वारा आकर्षित कर नष्ट करना चाहिए। प्रति हेक्टेयर 10 फेरोमेन ट्रेप लगाने के सरकार द्वारा समेकित कीट प्रर्वधन प्रत्यक्षण अन्तर्गत व्यवस्था की गई है।

(18) कीड़े की प्रारंभिक अवस्था में जनवरी महीने में नीम आधारित दवा अधिक लाभप्रद पाया जाता है।

(19) फली छेदक कीड़ों के लिए अन्य रसायनिक दवाओं की जगह पर बैसीलस थूरिनजेनसिस(जीवाणु आधारित कीटनाशी) का प्रयोग लाभप्रद पाया गया है।

+++

सघन कृषि प्रणाली में खाद तथा उर्वरक प्रबन्धन

i:rh{kk feJk
,-d-, l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-i-½

किसी भी स्थिति में चाहे सिंचित हो या असिंचित, एक ही जमीन में जब दो या दो से अधिक फसल लेते हैं, उसे हम सघन कृषि प्रणाली कहते हैं। जनसंख्या वृद्धि को ध्यान में रखते हुए सघन कृषि प्रणाली आज की अनिवार्यता है। दूसरी ओर मिट्टी किसानों का वह बहुमूल्य सम्पदा है जो एक पीढ़ी में दूसरी पीढ़ी को मिलती है। इसकी उत्पादन शक्ति बनाये रखना किसानों के लिये बहुत ही जरूरी है। अतः सघन खेती में खाद के युक्त संगत व्यवहार रखना किसानों के लिये बहुत ही जरूरी है। फलतः सघन खेती में खाद्य के युक्त संगत व्यवहार पर ध्यान रखा जाना चाहिए।

सिंचित अवस्था में हम एक साल में चार फसल से 8–10 टन प्रति हेक्टर तक उपज ले सकते हैं। यह या तो दो धान्य या दो धान्य एवं एक कम दिनों में होने वाली दलहनी फसल ले सकते हैं लेकिन अधिक उपज, अधिक लागत एवं अच्छी व्यवस्था पर ही निर्भर करती है।

पहले यह समझा जाता था कि असिंचित क्षेत्रों में सघन कृषि नहीं हो सकती है। लेकिन यह सत्य नहीं है। असिंचित क्षेत्रों में फसल सघनता फसल कितने दिनों में तैयार होता है उस पर निर्भर करता है। इसके अलावा मिट्टी की गहराई एवं मिट्टी में केबाल के अंश पर भी निर्भर करेगा। कारण मिट्टी जितनी गहरी एवं केबाल युक्त होगी, वर्षा का पानी उतना ही जमा होगा।

सघन कृषि प्रणाली का मुख्य उद्देश्य यही है कि प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिक से अधिक उपज लेने के बाद भी मिट्टी की उत्पादन क्षमता में ह्रास नहीं हो। रासायनिक खाद यद्यपि जैवांश रहित होते हैं, तथापि इनके व्यवहार से खेतों में जैवांश बढ़ता है, क्योंकि अधिक फसल उगने से खेतों को पौधों की पत्तियां तथा जड़े अधिक मात्रा में उपलब्ध होती हैं जो सड़ने के बाद जैवांश में परिवर्तित हो जाती हैं और जमीन को उत्पादक बनाये रखने में मदद करते हैं।

सघन कृषि प्रणाली के खाद की व्यवस्था के लिये पूरे साल के फसल चक्र को एक मानकर चलना होगा। इसके लिये विभिन्न कारकों का ज्ञान जरूरी है। जैसे पहली फसल में डाले गये खाद का कितना अंश दूसरी फसल के लिये जमीन में रह जाता है, दलहन वाली फसल से कितना नत्रजन जमीन में मिलता है, फसलो द्वारा कितना खाद ले लिया जाता है, आदि। इन सारी बातों को ध्यान में रखने का एक ही कारण है कि विभिन्न फसल चक्रों के लिये संतुलित खाद की अनुशंसा की जाय ताकि फसलों द्वारा उसका अधिकतम उपयोग हो सके। सही अनुशंसा के लिये अभी भी वैज्ञानिक शोध की आवश्यकता है, फिर भी उपलब्ध परीक्षणों के आधार पर विभिन्न पोषक तत्वों की व्यवस्था पर यहां कुछ सुझाव दिये जा रहे हैं।

1. धान्य फसल चक्र में नत्रजन का अवशेष प्रभाव नहीं रहता है। अतः फसल चक्र में हर फसल को अनुशंसा के हिसाब से पूर्ण नत्रजन देना अनिवार्य है।

2. फास्फोरस का कुछ अवशेष एक फसल से दूसरे फसल में रह सकता है। लेकिन रबी फसल में फास्फेट का सीधा उपचार ज्यादा लाभदायक होता है। जबकि खरीफ में अवशोशित फास्फेट भी पौधों के द्वारा लिया जा सकता है। अतः रब्बी में फास्फोरस डालना आवश्यक है लेकिन खरीफ में भी हम इसे छोड़ नहीं सकते।

3. सघन कृषि प्रणाली में पोटाश का जमीन से अधिक ह्रास होता है। अतः पोटाश पूरा डालना चाहिए। अगर जमीन में पोटाश अधिक मात्रा में है, तो उसकी जांच हमेशा कराते रहें ताकि सही समय पर उसका उपचार किया जा

सके।

4. साधारणतया 11 कि.ग्रा./हे. जिंक (50कि.ग्रा./हे. जिंक सल्फेट) गेहूँ–धान के एक फसल चक्र के लिये काफी है लेकिन यही मात्रा मक्का गेहूँ या मूंगफली गेहूँ फसल चक्र के 2 – 3 चक्रों के लिये काफी हैं।

5. गोबर को खरीफ के पहले डालना ज्यादा लाभदायक होता है। इसके डालने से जिंक भी बढ़ता है। एक टन गोबर के खाद से एक कि.ग्रा. जिंक, जिंक सल्फेट के रूप में मिलता है।

6. सघन कृषि प्रणाली में दलहन के द्वारा वायुमंडलीय नत्रजन का मिट्टी में संरक्षण नत्रजन के बचत में सहयोग देता है। ऐसा देखा गया है कि दलहन 9 से 25 कि.ग्रा. हे. नत्रजन मिट्टी में संचित करता है। इसी प्रकार धान वाले फसल चक्र में एजोला या ब्लूग्रीन अल्गी के द्वारा 25 से 40 कि.ग्रा./हे. तक नत्रजन मिट्टी को प्राप्त होता है। इन फसलों में अतिरिक्त नत्रजन खाद द्वारा दिया जाता है।

7. हर फसल चक्र का अपना अलग गुण होता है और उसी आधार पर परीक्षण भी होना चाहिए। जैसे आलू वाले फसल चक्र में अनुशंशित खाद की मात्रा आलू में ही डालना चाहिए कारण अवशेष तत्व का आलू बहुत कम इस्तेमाल करता है।

8. धान्य–दलहन वाले फसल चक्र में नत्रजन धान्य में डालनी चाहिए एवं फास्फेट दोनों फसलों में।

9. एक किसान के लिये उपरोक्त बातों पर ध्यान देना बहुत ही लाभदायक होगा बशर्ते कि किसान पहले ही पूरे फसल चक्र के लिये फसलों का चयन एवं खाद की मात्रा का ज्ञान हासिल कर लें। खाद की उचित मात्रा का ज्ञान मिट्टी जांच के आधार पर होनी चाहिए ताकि किसी पोषक तत्व की कमी का ज्ञान हो जिसका निदान किया जा सके।

सब्जियों को सुखा कर रखने की घरेलू विधि

vQlkfjdk vkteh [kku] ehjk mbdS ,oe~ vk'kqrks"k dqekj ekS;Z
,-dh-,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-iz-½

मानव आहार में शाक–सब्जियों की विशेष अहमियत है। ये शाक–सब्जियाँ जीवित भोजन के मुख्य स्त्रोत हैं। भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिशद, नई दिल्ली के अनुसार एक प्रौढ़ व्यक्ति को अच्छी सेहत के लिए प्रतिदिन 300 ग्राम हरी शाक–सब्जियाँ खानी चाहिए। परन्तु वर्तमान में अपने देश 186 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन–सब्जियों की उपलब्धता है। जो औसत से कम है। सब्जियों के कम उपलब्धता का कम कारणों में उत्पादन का कम होना तथा उत्पादन के बाद सब्जियों का सड़–गल जाना मुख्य है। उद्यान वैज्ञानिकों के अनुसार भारत में उत्पादन के मुख्य मौसम में वैज्ञानिक रख–रखाव तथा प्रसंस्करण के अभाव में 25–30% शाक–सब्जियाँ नष्ट हो जाती है। ग्रामीण स्तर पर महिलाओं को इस दिशा में प्रशिक्षित करके इस क्षति को कम किया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में लेखकों ने रबी मौसम में व्रहत अस्तर पर उत्पादन होने वाली कुछ चुनिंदा सब्जियों को घरेलू स्तर पर सुखाकर भन्डारित करके रखने का वर्णन सरल भाषा में दिया है। सब्जियाँ पोषक तत्वों के सुलभ स्त्रोत होने के साथ–साथ खाधान्नों की बचत करते है। परन्तु ये साल के हर मौसम में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होती। किसी ऋतु में तो इनकी भरमार होती है और कभी अभाव खटकता है। इसका कारण है खास मौसम में खास–खास सब्जियों का उत्पन्न होता। कमी के दिनों में इनकी कीमत ज्यादा हो जाती है। उन दिनों के लिए कुछ मन–पसंद सब्जियों को सुखाकर रखा जा सकता है और अभाव के दिनों में महंगी सब्जी खरीदने की जगह उनका इस्तेमाल किया जा सकता है। शीतकाल में जब सब्जियाँ बहुतायत से मिलती हैं, सस्ती दरों में खरीदकर इन्हें सुखाकर रखना लाभकारी होता है।

फूलगोभी, पातगोभी, करैला, गाजर, मूली आदि सब्जियों को सुखाकर रखने की परम्परा जमाने से चली आ रही है। परन्तु सुखाने के उचित तरीके का इस्तेमाल नहीं करने से सूखी सब्जियाँ अच्छी नहीं उतरती। उनमें फफूंद लग जाती है रग बदरंग हो जाता है और स्वाद बिगड़ जाता है।

सब्जियों को सुखाकर रखने का सही तथा सरल तरीका (ताकि सब्जियों का प्राकृतिक रंग, स्वाद और सुवास बना रहे) चार चरणों में पूरा होता है– (1) सुखाने से पहले सब्जियों की धुलाई, (2) धुली सब्जियां को उबालना (3) उबली सब्जियों को गंधक का धुआं देना और (4) धूम्रित सब्जियों को धूप में सुखाना।

1. सब्जियों की धुलाई : सबसे पहले सब्जियों को साफ पानी से कई बार धो दें। धोने से सब्जियों में लगे घास–फूस, धूल–कण, मिट्टी–कचरा निकल जाते हैं। धुलने के बाद सब्जियों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लें। पातगोभी, गाजर, मूली, आलू, शलजम को 3 ⁄ 16 इंच और फूलगोभी, भिंडी कद्दू, टमाटर, करैला, बैगन को 1 ⁄ 4 इंच मोटी फांकों में काटें। काटते वक्त कीट लगे या सड़े हिस्से को छांट कर अलग कर दें।

2. सब्जियों को उबालना : सब्जियों को धोने और काटने के बाद उबालें। इसके लिए एक बर्तन में साधारण नमक (सोडियम क्लोराइड) और सोडा (सोडियम बाई कार्बोनेट) का एक प्रतिशत घोल बना लें। घोल बनाने के लिए प्रति लीटर पानी में दस ग्राम नमक और दस ग्राम सोडा डाल कर चम्मच से चला दें। फिर, इसे गर्म करें। जब पानी खौलने लगे तब कटी सब्जी को डाल दें और चार–पांच मिनट तक उबलने दें। इसके बाद उबली सब्जी को निकाल लें। बर्तन में एक बार एक ही सब्जी को उबालें, एक साथ मिलाकर सब्जियों को न ही उबालें।

सब्जियों को साडा या नमक के पानी में उबालने से सब्जियों का प्राकृतिक रंग बना रहता है क्योंकि सब्जियों पर

हावी होने वाले इन्जाइम नष्ट हो जाते हैं। स्वाद बेहतर हो जाता है। नमक के प्रभाव से सब्जियों के दीर्घ काल तक टिकने की शक्ति (कीपिंग क्वालिटी) बढ़ जाती है। लवणों के साथ उबलने से सब्जियों का ऊपरी भाग जो ज्यादा कड़ा होता है, मुलायम बन जाता है, जिससे सुखाते वक्त धूप की गर्मी अन्दर तक जाती है और सब्जियाँ अच्छी तरह और जल्दी सूखती है।

3. सब्जियों को गंधक का धुआं देना : उबली सब्जियों को गंधक का धुआं देने के लिए एक छोटे से कमरे को खाली कर लें। फिर, उसमें रस्सी से बुना चारपाई डाल दें। चारपाई पर साफ कपड़ा बिछा दें और उबली सब्जियों को कपड़े पर फैला दें। चारपाई के नीचे धुआं रहित लकड़ी के अंगारे (चिनगारियाँ) एक कड़ाही में रख दें और उसमें थोडा गंधक डाल दें। कमरे के खिड़की दरवाजे बन्द कर दें। थोडी देर में गंधक का धुआं निकलने लगेगा और सब्जियों में प्रवेश करेगा। गंधक की मात्रा का अनुमान सब्जियों की मात्रा से करें। प्रति क्विंटल लगभग 100–125 ग्राम गंधक पर्याप्त होता है। गंधक का धुआं देने से सब्जियों की सड़ने या फफूंद लगने की संभावना निरस्त हो जाती है। सब्जियों का रंग कायम रहता है और सूखी सब्जियों को दोहरी सुरक्षा मिल जाती है।

4. धूम्रित सब्जियों को धूप में सुखाना : धुआं दिये सब्जी को धूप में ऐसी जगह सुखायें जहां धूल, मक्खी, मच्छर, मधुमक्खी, हड्डा इत्यादि न हो। इनसे बचने के लिए सब्जियों को जालीदार या पतले साफ कपड़े से ढ़ंक कर सुखायें। बीच–बीच में सब्जियों को पलटते रहें। सूख जाने पर सब्जियाँ कुर–मुरी (ब्रिट्ल) हो जाती है।

सूखी सब्जियों को सूखे बन्द डिब्बे में डालकर लगा दें तथा मोम पिघलाकर सील कर दें, ताकि नमी प्रवेश नहीं करे। जब सब्जी बनानी हो तो पकाने के 3–4 घंटे पूर्व गर्म पानी में उसे डाल देनी चाहिए।

अपने देश में कुछ पौष्टिक तथा स्वादिश्ट सब्जियाँ किसी खास मौसम में ही उपलब्ध हो पाती हैं। इनका उत्पादन इस समय इतना अधिक हो जाता है की उनकों ताजी अवस्था में इस्तेमाल करना सम्भव नही हो पाता। घरेलू स्तर पर इन शाक–सब्जियों का प्रस्ंसकरण करके इनका जायका हम सालों भर ले सकते हैं। परन्तु इस दिशा में ग्रामीण बहनों को आगे आना होगा तथा अपने परिवार के पोशण हेतु सब्जियों का सूखौता बना कर रखना होगा जो एक राष्ट्रीय पुनीत कार्य है।

+++

टमाटर एवं बैगन में रोग प्रबन्धन

Mk- Mej fl g
,-d-, l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-i-½

। सर्वे भवन्तु सुखिना, सर्वे भवन्तु निरामया।

जिस प्रकार विश्व में सभी जीव तथा मनुश्य निरोग एवं सुखी रहना चाहते हैं, वैसे ही यदि हमारी फसलें भी निरोग रहें तो उत्पादन अधिक होगा। रोग युक्त खाद्य वस्तुओं को खाने से हमारे शरीर में अनेकानेक प्रकार की बीमारियां हो सकती हैं साथ ही फसल रोगों से किसान को आर्थिक हानि होती है। फसल रोग प्रबन्धन प्रस्तुत लेख की विषय वस्तु है।

बैंगन में लगने वाले रोग

(1) फॉमौप्सिस झुलसा :

रोग के लक्षण – यह कवक द्वारा होने वाला रोग है। इस रोग में पौधशाला में पत्तियों पर हल्के भूरे रंग के गोल धब्बे बन जाते हैं जो अधिकतर निचली पत्तियों पर पाये जाते हैं। तनो पर यह रोग गाँठ के पास दबे हुए गलन के रूप में दिखाई देता है। रोग के बढ़ने के साथ ऊपर का छिलका सूखता जाता है। और कभी–कभी आधी से अधिक टहनियां सूख जाती हैं जिनपर काले रंग के बिन्दु दिखाई देते हैं। इस रोग में फलों पर हल्के भूरे रंग के बिन्दु दिखाई देते हैं। फलों पर इस रोग में हल्के भूरे रंग के दबे हुए धब्बे बन जाते हैं जो संक्रमण के साथ–साथ बढ़ते जाते हैं और सड़े फलों पर छल्ले बन जाते हैं अन्त में फल डंठल के अन्तिम भाग से अलग होकर नीचे गिर जाते हैं। फल के अन्दर बीज भी संक्रमित हो जाते हैं।

प्रबन्धन –

1. बीज के लिए स्वस्थ पौधों से फलों का चुना करें
2. फसल की द्वितीय फलत से बीज बनायें।
3. अगस्त के अन्तिम सप्ताह से पूर्व रोपाई न करें।
4. अनाज वाली फसलों को फसल चक्र में शामिल करें।
5. रोगी फसल के अवशेषों तथा संक्रमित फलों को इकट्ठा करके जला दें।
6. पौधों को उचित दूरी पर कतारों में लगायें जिससे हवा का संचार अच्छा रहे।

2. सफेद गलन व पट्टा गलन (कॉलर रॉट) :

रोग के लक्षण – सफेद गलन में संक्रमण फूलों से प्रारम्भ होता है। पौधों की टहनियाँ ऊपर के भाग से नीचे की ओर सूखने लगती हैं। पट्टा गलन (कॉलर रॉट) में जमीन के समीप तने का छिलका गलने लगता है और पूरा पौधा जमीन के पास से गिर जाता है।

प्रबन्धन –

1. फसल को खरपतवार मुक्त रखें।
2. सिंचाई करके दो बर गर्मी की गहरी जुताई करें।
3. रोपाई से पूर्व पौध की जड़ों को 10 ग्राम/लीटर पानी की दर से ट्राइकोडर्मा के घोल में 10–15 मिनट तक उपचारित करके रोपाई करें।
4. सघन रोपाई न करें।

5. रोपाई के 20 दिन बाद 10 ग्राम/लीटर पानी की दर से ट्राइकोडर्मा का घोल तने के पास डालें।
6. शीघ्र नियन्त्रण हेतु 3 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

3. लिटिल लीफ (बंझा रोग)

रोग के लक्षण – पत्तियां छोटी रहकर प्रत्येक शाखा पर गुच्छे के रूप में बन जाती है, जिससे पौधे झाड़ीनुमा हो जाते हैं। पत्तियों का रंग हल्का हरा हो जाता है। और पत्तियां मुलायम एवं चिकनी हो जाती हैं। फल या तो बनते ही नहीं यदि बनते हैं तो बैंगनी से सफेद अथवा हल्के पीले हो जाते हैं।

प्रबन्धन –

1. क्योंकि रोग कीटों द्वारा फैलता है अतः उनके नियंत्रण के लिए वर्टीसीलियम लैकैनाई अथवा अन्तः प्रवाही कीटनाशी का छिड़काव करें।
2. रोगी पौधों को उखाड़ कर जला दें।
3. अगस्त के अन्तिम सप्ताह से पूर्ण रोपाई न करें।
4. टैट्रासाइक्लिन 100 मिली ग्राम/लीटर पानी की दर से 10–12 दिनों के अन्तराल पर छिड़कें।

बैंगन एवं टमाटर में जीवाणु झुलसा

रोग के लक्षण – पौधों की पत्तियां मुरझाने लगती हैं पौधों में संवहन वंडल भूरा पड़ जाता है, द्वितीयक व तृतीयक जड़े सड़ जाती है और केवल मुख्य जड़ जो कार्की हो जाती है बची रह जाती है। पौधों का अचानक सूखने के कारण पत्तियां पीली नहीं पड़ती।

प्रबन्धन –

1. रोग सहनशील प्रजातियां उगायें।
2. संक्रमित खेत को एक वर्ष तक खाली रखें तथा गर्मी की जुताई करें।
3. नीम की खली तथा कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग करें।
4. मिट्टी का पी.एच.उदासीन बनाये रखें।
5. जल निकास का उचित प्रबन्ध रखें।
6. मिट्टी में एण्टीवायोटिक का प्रयोग करें।

टमाटर एवं बैंगन में उखटा रोग

रोग के लक्षण – अगेती रोपी गई फसल में अगस्त–सितम्बर के महीने में यह रोग अधिक लगता है। रोग मिट्टी के समीप वाले तने के भाग से शुरू होकर नीचे की ओर बढ़ता है। मिट्टी के समीप वाला भाग गलकर सड़ जाता है और पौधा मुरझा जाता है। जड़ों के संवहन बंडल कवक के बीजाणुओं से भर जाते हैं जिससे पानी का ऊपर जाना बंद हो जाता है।

प्रबन्धन –

1. सिंचाई करके गर्मी की गहरी जुताई फिर सिंचाई और फिर गर्मी की जुताई करें।
2. ट्राइकोडर्मा, जैविक फफूंदी नाशी (2 किलो/एकड़) से रोपाई पूर्व भूमि उपचार करें।
3. रोपाई से पूर्व पौध की जड़ों को 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा/लीटर पानी से 10–15 मिनट तक उपचारित करें।
4. रोपाई के 20 दिन बाद 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा/लीटर का घोल पौधों के तनों के पास डालें।
5. जल निकास का उचित प्रबन्ध करें।
6. उवर्रकों तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों का सही अनुपात प्रयोग करें।

7. कार्बन्डाजिम 1 ग्राम/लीटर पानी के जलीय घोल द्वारा तने को भिगायें।

टमाटर में लगने वाले रोग

(1) अगेती झुलसा :

लक्षण – पत्तियों के किनारे के भाग एवं क्राउन भाग पर अनियंत्रित धब्बे दिखाई देते है। ये छोटे धब्बे आकार में बढ़कर टारगेट बोर्ड की तरह दिखाई देते हैं। धब्बे फल पर अग्र भाग की तरफ बढ़ते हैं तथा फल और पुंज के जुड़ाव के बीच तक गोलाई में बनते हैं।

प्रबन्धन –

1. फसल चक्र में सरसों कुल की फसल शामिल न करें।
2. रोगमुक्त फलों से स्वस्थ बीज तैयार करें।
3. बीज का शोधन 2.5 ग्राम कैप्टान/किलो के हिसाब से करें।
4. प्रभावित पत्तियों तथा अवशेषों को जलाकर नष्ट करें।
5. रोग से शीघ्र बचाव के लिए क्लोरोथेलोनिल 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से 8 दिन के अन्तराल पर फूल आने के बाद छिड़काव करें।

2. पछेती झुलसा :

लक्षण – रोग पत्तियों के अग्रभाग एवं फलों से शुरु होता है पत्तियां जगह–जगह झुलस जाती हैं और झुलसे भाग पर हल्के भूरे, भीगे मृत ऊतक दिखाई देते हैं। प्रभावित भाग कड़ा तथा सामान्य पत्ती से मोटा हो जाता है निचले प्रभावित क्षेत्रों के पास मृदरोमिल सफेद कवक दिखाई देता है। संक्रमित कच्चे व पके फलों पर हरे व भूरे रन्ध्रयुक्त गद्देदार ऊतक हो जाते हैं। जिनको काटने पर खास गन्ध आती है।

प्रबन्धन –

1. अगेती झुलसा के लिए अपनाये गये उपाय करें।
2. दिसम्बर–जनवरी माह में जब तापमान कम हो और हल्की बूंदा–बांदी के मौसम में 2.5 ग्राम मैंकोजेव प्रति लीटर पानी की दर से 5–6 दिन के अन्तराल पर 2 बार छिड़काव करें।
3. संक्रमण के दो दिन के अन्दर मैंकोजेव + मेटालैक्सिल फफूंदीनाशी का 2.5 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

3. जीवाणु झुलसा :

रोग के लक्षण – पौधों में छोटे गहरे रंग के धब्बे पत्तियों एवं तनों पर बनते है। कई धब्बे आपस में मिल जाते हैं और पूरी पत्ती झुलसी दिखाई देने लगती है। फलों पर छोटे–छोटे जलीय गोल धब्बे खुले हुए फलों पर बनते हैं जो कुछ उभरे एवं खुरदरे दिखाई देते हैं। यह रोग 20^0–25^0C तापमान एवं लगभग 90% से अधिक आपेक्षिक आर्द्रता पर अधिक प्रभावी होता है।

प्रबन्धन –

1. बीज उपचार किसी अंतः प्रवाही जीवाणुनाशी (एन्टीबायोटिक) जैसे स्ट्रैप्टोसाइक्लिन 100 मि.ग्रा./लीटर पानी के घोल में आधे घंटे तक उपचारित करके बोये।
2. स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 1 ग्राम/5 लीटर पानी की दर से प्लान्टोमाइसिन 100 ग्राम/एकड़ की दर से 6–8 दिनों के अन्तराल पर अलग–अलग छिड़काव करें।
3. एन्टीबायोटिक छिड़काव के 12–15 दिनों बाद कॉपर–ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्राम/लीटर पानी) का

छिड़काव करें।

4. सब्जियों की स्वस्थ पौधशाला तैयार करने के लिए बताये उपाय अपनाएं।

4. जटिल पर्ण कुन्चन (कॉम्प्लेक्स लीफ कर्ल) :

लक्षण – ग्रसित पौधों की पत्तियां नीचे की ओर मुड़ी हुई, अनियमित, ऐठन एवं हल्की पीली हो जाती है। पौधों में अधिक गांठे बनने के साथ–साथ वह झाड़ीनुमा हो जाता है संक्रमित पौधों पर फूल व फल नहीं बनते है।

प्रबन्धन –

1. खेत के आस पास के क्षेत्र को खरपतवार मुक्त रखें।
2. सुरक्षित पौधशाला तैयार करें।
3. सफेद मक्खी से बचाव हेतु जैविक फफूंदीनाशी वर्टीसिलियम लैकेनाई का छिड़काव पौधशाला एवं फसल पर 10 दिन के अन्तराल पर करते रहें।
4. जहां तक सम्भव हो अगेती फसल न लें।
5. रोग सहनशील प्रजातियां अपनाएं।

टमाटर बैंगन में ग्रन्थि सूत्रकृमि :

लक्षण – जड़ों में अनियमित आकार की गांठे बन जाती हैं जिससे जड़ों का विकास रूक जाता है। जड़ों के संवहन बंडल गाठों के बनने से अवरूद्ध हो जाते हैं। जिससे पौधों को पानी तथा पोषक तत्वों की पूर्ति कम हो जाती है। पौधों के वायवीय भाग पीछे पड़ जाते हैं। अत्यधिक संक्रमण की स्थिति में पौधों की मृत्यु तक हो जाती है।

प्रबन्धन –

1. स्वस्थ पौधशाला तैयार करने के लिए बताये गये उपाय अपनायें।
2. अन्तसंस्यन फसल के रूप में 4–5 पंक्तियों के बाद एक पंक्ति गेंदा की लगायें।

सब्जियों की स्वस्थ पौधषाला

यदि जननी निरोग होगी तो उससे पैदा होने वाली सन्तान भी निरोगी होगी। इसी प्रकार यदि हमारी पौधशाला निरोगी होगी तो उससे उत्पन्न पौधे भी निरोगी (स्वस्थ) होंगे। सब्जियों के तमाम रोग जैसे–बीज गलन, आर्द्रगलन, जीवाणु अंगमारी, कालागलन, सफेद गलन, विषाणु रोग, सूत्रकृमि संक्रमण, उखटा, फॉमोप्सित ब्लासट, पर्णकुच्चन, जड़ गलन, तना गलन, जीवाणु उखटा एन्थ्रैकनोज, डाउनी मिलड्यू आदि अस्वस्थ पौधशाला (नर्सरी) से मुख्य खेत में पहुँचकर भारी मात्रा में नुकसान पहुँचाते हैं। यदि हम पौधशाला में स्वस्थ पौध तैयार कर लें तो रोग प्रबन्धन में 50 प्रतिशत से अधिक सफलता मिल जाती है।

पौधषाला में एकीकृत प्रबन्धन

1. मई–जून के महीने में पौधशाला की मिट्टी को गीला करके उसमें सरसों वर्गीय पौधों को काटकर मिलायें एवं सफेद पॉलीथीन से ढ़क कर चारों ओर से मिट्टी से सील कर दें ताकि पॉलीथीन के अन्दर से हवा तथा वाष्प बाहर न आ सके। एक महीने बाद पॉलीथीन हटा दें।
2. पौधशाला की मिट्टी में सूक्ष्म तत्वों को संतुलित मात्रा में मिलायें।
3. बीज बोने से पूर्व मिट्टी को ट्राइकोडर्मा बिरिडी या ट्राइकोडर्मा हर्जियानम (10 ग्राम ट्राइकोडर्मा + 1 लीटर पानी अथवा 15–25 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति वर्गमीटर) से उपचारित करें।
4. बीज को 6–10 ग्राम/किलोग्राम ट्राइकोडर्मा से उपचारित करें।

5. पौधशाला को तेज धूप तथा भारी वर्षा से बचाने के लिए छप्पर की व्यवस्था करें।
6. हवा के उचित संचार वाले स्थान पर पौधशाला बनायें।
7. कीटों द्वारा फैलने वाले रोगों से बचाव हेतु लो टनल पॉली हाउस का प्रयोग करें।
8. पौघशाला ऐसे स्थान पर बनायें जहाँ की जमीन आस–पास की जमीन से थोड़ी ऊँची हो।
9. नीम की खली 100 ग्राम/वर्गमीटर क्षेत्र के हिसाब से मिट्टी में मिलायें।
10. बीज की बुबाई कतारों में उचित दूरी तथा उचित गहराई पर करें।
11. बीज उगने के बाद ट्राइकोडर्मा 10 ग्राम/1 लीटर पानी में घोलकर नर्सरी वेद को भिगोयें।
12. पौधशाला से पौधे उखाड़ने के बाद 0.25 प्रतिशत के डमीडाक्लोप्रिड के घोल में आधे घंटे तक डुबोये तत्पश्चात जड़ों को 10 ग्राम/लीटर ट्राइकोडर्मा के घोल में 15–20 मिनट तक उपचारित करके रोपाई करें।
13. ग्रन्थि सूत्रकृमि से बचाव के लिए नर्सरी तैयार करने से पहले गेंदा की फसल लें।
14. पेस्टीसाइड्ड का छिड़काव जहाँ तक सम्भव हो सके शुक्ल पक्ष में ही करें।

चमकते बर्तनों का राज

बर्तन जितना स्वच्छ और साफ होगा उतनी ही उसकी उम्र भी अधिक होगी। गन्दे बर्तन में पकाया हुआ भोजन केवल स्वाद में ही खराब नहीं होता बल्कि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध होता है। यहां बर्तनों को साफ रखने के लिए कुछ सुझाव दिये जा रहे हैं, इन्हें अपनाइये और बर्तनों की उम्र बढ़ाइये – वे बर्तन जिनमें मछली अथवा अण्डे पकाये हों, आटा गूंधा गया हो या दूध उबाला गया हो, उन्हें ठण्डे पानी में ही भिगोइये। गरम पानी में ये चीजे बर्तन के साथ लग जाती हैं उन्हें उतारने में मुश्किल होती है।

गरम बर्तनों में ठंडा पानी कभी न डालिये। इससे मजबूत से मजबूत धातु भी जल्दी ही घिस जायेगी।

जिन बर्तनों – तवा, बेलन, पेस्ट्री–बोर्ड आदि पर रोटी या आटे की कोई भी चीज बनती हो, उन्हें साफ करने के लिए उन पर थोड़ा नमक छिदककर गीले कपड़े से पोछ दीजिये। केवल पानी से धोने पर उनके छिद्रों का मैल साफ नहीं होगा।

फौलाद की छूरियों पर से दाग–धब्बे दूर करने के लिए उन्हें बाथ–ब्रिक–पाउडर और कच्चे आलू से मलिये।

चिकने बर्तनों पर 5–6 बूंद सिरका डाल दीजिये फिर उन्हें राख डालकर खूब मल दीजिये और धो–पोंछकर रख लीजिये। चिकनाई दूर हो जायगी।

चिकने बर्तनों को गरम पानी से सोडा डालकर उससे धोइये।

चूल्हे पर चढ़ाने से पूर्व पतीली या केतली की पेंदी पर राख अथवा मिट्टी का पोचा फेंर ले तो मांजते समय उनकी कालिख एकदम साफ हो जाती है क्योंकि ऐसा करने से बर्तनों पर आग की सीधी लपट नहीं लगती और धुंआ कालिख आदि मिट्टी की पर्त पर ही जमता है। यदि मिट्टी न लगाना चाहें, तो कड़वा तेल चुपड़ लें।

मिट्टी के तेल के पीपों जैसे बदबूदार बर्तन साफ करने हों तो पहले कपूर मिले गर्म पानी से खूब धोयें। फिर सोडे के पानी से अच्छी तरह धो डालें।

बर्तन साफ करते समय कभी नहीं खुरचने चाहिए। खुरचने से बर्तनों में निशान पड़ जाते हैं और इन निशानों में मैल फंस जाती है जो हानिकारक है।

जिस बर्तन में प्याज बनता है उसमें अक्सर प्याज की गन्ध आती है। यह गन्ध उस बर्तन में आलू उबालने से दूर की जा सकती हैं। नमक के पानी में धोने से भी बदूबू चली जाती है।

जो बर्तन प्रतिदिन काम में नहीं आते हों उन्हें व्यर्थ रसोई घर में न रखकर, भण्डार घर में किसी आलमारी या सन्दूक में रख देना चाहिए। रसोई घर में व्यर्थ पड़े हुए ये बर्तन धुएं और मिट्टी आदि से खराब हो जाते हैं।

कृषि में जैवप्रौद्योगिकी की उपयोगिता की एक झलक

Mk- deys'k pkjs ,oa ekgh pkjs
,-d-,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-i-½

जैवप्रौद्योगिकी मुख्य रूप से ऐसी तकनीक है जिसमें जीवित जीवों जैसे सूक्ष्मजीवों, विशाणु, कवक, कोशिकाओं का उपयोग कर पौधों या जनवरों को सुधारने के लिये जेनेटिक इंजीनियरिंग, टिशु कल्चर तकनीक के द्वारा उन्नत पशुधन एवं पौधे तैयार किये जाते हैं। इसमें जैव रसायन, आणविक रसायन विज्ञान, सूक्ष्म जीव विज्ञान, आनुवांशिकी एवं जैव प्रौद्योगिकी विषयों की भूमिका महत्वपूर्ण है। इन विषयों के ज्ञाता एवं वैज्ञानिक जीन स्थानांतरण या संयोजक डी.एन.ए. द्वारा द्वारा बेहतर फसल किस्मों एवं आनुवांशिकी सुधारों द्वारा बेहतर पशुधन तैयार करते हैं।

<u>कृषि में जैवप्रौद्योगिकी की भूमिका :</u>

कृषि के विकास के लिये कृषि जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जाता है। कृषि के विकास के लिए आज वैज्ञानिक नित नये आयाम पेश कर रहे है। जैसे आज वैज्ञानिक सूक्ष्मजीवों से जीन निकाल कर पादपों में स्थानांतरित कर रहे है जिसे पौधों में लगने वाली बीमारियों को रोका जा सकता है एवं पैदावार भी बढ़ाई जा सकती है। पहले के परंपरागत तरीकों में उन्नत किस्म की फसलों को तैयार करने के लिए ब्रीडर अनियंत्रित तरीके से पौधों को चुनकर नई किस्मों तैयार करता था लेकिन आज के परिदृश्य में जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग के द्वारा वैज्ञानिक डी.एन.ए से उपयोगी जीनों को निकालकर उनसे नई किस्म के पौधे विकसित कर रहे है जो कि कीट एवं कवक रोगों को रोककर फसल की गुणवत्ता एवं उत्पादकता बढ़ाने में मदद करते है साथ ही पौधे में सूखा से लड़ने की शक्ति में वृद्धि करते है।

<u>बॉयोफर्टीलाइज़र, आर्गेनिक फॉर्मिंग एवं वर्मी कम्पोस्टिंग की उपयोगिता :</u>

आज रासायनिक खाद एवं कीटनाशकों के बढ़ते उपयोग के कारण पर्यावरण संबंधी समस्यायें बढ़ी है। कीटनाशकों के ज्यादा इस्तेमाल के वजह से पंजाब, जो की बहुत बड़ा कृषि उत्पादक प्रदेश है, वहां के किसान एवं लोग कैंसर जैसी भयानक बीमारी की चपेट में है। रासायनिक तत्वों के ज्यादा इस्तेमाल की वजह से आज कृषि क्षेत्र एवं भूजल बहुत प्रभावित हो चुका है एवं ये खतरनाक तत्व कृषि उत्पाद में आ चुके है जो कि हमारी भोज्य श्रृंख्ला में समाहित हो चुके है और उन्हें हम खा रहे है जिससे हम ही नहीं पूरा जैविक संसार बुरी तरह से प्रभावित हो रहा है। इस विकट परिस्थिति से निकलने के लिए आज हम जैव प्रौद्योगिकी पर आधारित है जिसमें इन रासायनिक तत्वों के विकल्प के रूप में ऑर्गेनिक फॉर्मिंग एक नया आयाम स्थापित हो चुका है जिसमें बॉयोफर्टीलाइज़र का उपयोग प्रमुख है यह बॉयोफर्टीलाइज़र वे सूक्ष्मजीव है जो पौधों की जड़ के आसपास उपस्थित होकर उन्हें पोषित करने के लिए जरूरी कार्य करते है जैसे– नाइट्रोजन स्थरीकरण, पादप विकास हार्मोन का स्त्रावण, बीमारी लगाने वाले कीटों एवं सूक्ष्मजीवों को खत्म कर। इसलिये इन्हें बॉयोफर्टीलाइज़र एवं बॉयो पेस्टीसाइड्स कहा जाता है। वर्मी कम्पोस्टिंग का उपयोग कर आज भारतीय

कृशक समाज भरपूर स्वस्थ फसल ले रहे है।

कृषि जैव प्रौद्योगिकी विष्व में भारत की स्थिति :

आज अमेरिका की तर्ज पर भारत में भी वाणिज्यिक बॉयोटेक फसले उगाई जा रही है और आज भारत जैवप्रौद्योगिकी फसले उगाने वाला विश्व का चौथा सबसे बड़ा देश बन चुका है। इंटरनेशनल सर्विस फॉर द एक्सीविशन ऑफ एग्री बॉयोटेक अप्लाइंसेस (आई.एस.ए.ए.ए.) की और से जारी सालाना वैश्विक रिपोर्ट के अनुसार वर्श 2008 में देश में 76 लाख हेक्टेयेर भूमि पर वाणिज्यिक जैवप्रौद्योगिकी फसल उगाई गई।

आने वाले 50 वर्श बाद हमें हमारी जनसंख्या की खाद्य जरूरते पूरी करने के लिये जैवप्रौद्योगिकी के आलावा अन्य कोई और विकल्प मौजूद नहीं है। जैव प्रौद्योगिकी फसले किसानों में आज अत्यंत लोकप्रिय हो रही है जो कि कीटानाशकों की आवश्यकता एवं रासायनिक खादों पर ज्यादा निर्भरता को कम कर रही है।

भू एवं जलसंरक्षण

bath- dqekj lkuh ,oa bath- vthr ljkBs
,-ds-,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-iz-½

मानव जाति के लिये भू एवं जल प्रकृति की देन है क्योंकि पेड़ पौधे इसी में उगते है जिनसे मानव एवं पशु जीवन का पोषण होता है, पेड पौधे मिट्टी में सुचारू रूप से उगते रहें इसके लिये मिट्टी तथा उसके साथ–साथ जल का संरक्षण करना आवश्यक है। कृषि भूमि में भू एवं जल संरक्षण के लिये निम्नलिखित उपाय किये जाते है।

सस्य विधियां : समोच्च खेती, ढालू भूमियों पर खेती करने की एक ऐसी विधि है, जिसमें भूमि की जुताई, भूमि की तैयारी, बोवाई इत्यादि सभी कार्य ढाल के विपरीत दिशा में समोच्च रेखा पर की जाती है। इस विधि में अनेक डोलियों एवं कुंडो का निर्माण होता है जो मृदा के कटाव को रोकती है। तथा मृदा एवं जल का संरक्षण करती है। हर डोल वर्षा के जल को रोकती है जो जमीन में संरक्षित होता है तथा उससे पैदावार बढ़ती है। समोच्च खेती 18 प्रतिशत से कम ढाल वाली भूमि में अपनाई जा सकती है।

भू एवं जल संरक्षण की सस्य विधियां

पट्टीदार खेती : पट्टीदार खेती ढालू भूमि पर वर्षा जल से होने वाले कटाव का नियंत्रण करती है। इस पद्धति से अपरदन वाली फसलों जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा, कपास आदि को अपरदन अवरोधी फसलों जैसे मूंग, उर्द, मोठ, मूंगफली आदि के साथ उसी खेत में पट्टियों में उगाया जाता है। मृदा अपरदन अवरोधी फसलें अपवाह के वेग को कम करती हैं। साधारणतया जितना अधिक ढाल हो उतनी ही अधिक अपरदन अवरोधी फसल की चौड़ाई और अपरदन अनुमोदक फसल की चौड़ाई अधिक रखी जाती है।

पलवार खेती और फसल अवशेष प्रबंधन

पलवार खेती फसल पंक्तियों के बीच की मिट्टी को फसल के अवशेषों या पलवार की एक 10–12 सेमी मोटी परत से ढकने की प्रक्रिया है। यह अनुभव किया गया है कि पलवार वर्षा बूंदों से मृदा की रक्षा करती है तथा मिट्टी द्वारा पानी के सोखने की क्षमता को बढाती है। जिसके फलस्वरूप अपवाह एवं मिट्टी से पौधों के पोषक तत्वों के होने वाले नुकसान को कम करता है।

वानस्पतिक अवरोध या सजीव बंध

केवल वानस्पतिक अवरोध या वानस्पतिक समोच्च बंध या सजीव बंध, मृदा अपरदन के नियंत्रण एवं प्राकृतिक नमी को मृदा में संरक्षण करने में उपयोगी सिद्ध हुए है, एक बार संस्थापित ऐसे सजीव बंधों को प्रायः अनुरक्षण की आवश्यकता नही होती तथा ये मृदा को अपरदन से संरक्षित रखेंगे एवं भूमि में नमी संरक्षित करेंगे। वानस्पतिक अवरोध समोच्च रेखा पर लगाये जाते है, जो समोच्च खेती अथवा समोच्च आकर्षण क्रियाओं के लिए मार्गदर्शक रेखाओं अथवा प्रधान रेखाओं का उद्देश्य भी पूरा करते है।

सजीव बंधों के लिए शुष्क क्षेत्रों में मूंज घास, सेवन घास, कैर और अन्य स्थानीय उपयुक्त वनस्पति को उपयोग

में ले सकते है। अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए खस घास, मेहन्दी, रामबांस, मूंज, लेमन घास आदि लगा सकते हैं। खस घास या अन्य वानस्पतिक बंधों के साथ–साथ मिट्टी की ऊंची मेड़ो का निर्माण भी कर सकते हैं।

अभियांत्रिकी विधियां

कृषि योग्य भूमि पर मृदा अपरदन नियंत्रण हेतु अभियांत्रिकी विधियां अति आवश्यक भूमिका निभा सकती है, जब सस्य विधियों के उपाय अकेले पर्याप्त नहीं होते है।

जल संग्रहण संरचनायें

जल के यथोचित संरक्षण एवं उपयोग हेतु उपायों की योजना करते समय निम्नलिखित सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

- वर्षा के पानी को गिरने की जगह रूका रहने के लिए अधिक समय मिले ताकि ज्यादा से ज्यादा वर्षा जल भूमि में शोषित हो सके।
- लम्बे ढाल को कई छोटे–छोटे ढालों में विभाजित करें ताकि जल बहने की गति इतनी कम हो जाय कि मृदा का अपरदन न हो।
- जल निकास नालियों में अधिक अपवाद से होने वाले नुकसान के विपरीत सुरक्षा उपाय करने चाहिये।

प्रस्तावित बंध के किनारे से 3 मीटर दूर ढाल के ऊपर की ओर 2.5 मीटर चौड़ी और 0.3 मीटर गहरी आयताकार खाइयों से खुदी हुई मिट्टी से बंध का निर्माण करते हैं। बंध बनाने के लिए इन खाइयों को हमेशा बंध के ऊपर की ओर के ढाल पर खोदी जाती है, ताकि वे कर्षण क्रियाओं के दौरान आसानी से जोती जा सके तथा वर्षाकाल में ऊपर की ओर मृदा से धीरे–धीरे भर जायें और खेत समतल हो जाए। मिट्टी हेतु खोदी जाने वाली खाइयों की चौड़ाई (गहराई को स्थिर रखते हुए) आवश्यकतानुसार कम या अधिक कर सकते हैं। खाइयाँ पूरी लम्बाई में लगातार खोदनी चाहिए। अवनालिकाओं अथवा अवनमनों में खाइयां नहीं बनानी चाहिए। तीन सेमी से अधिक बकार के ढेलों अथवा पत्थरों को बंध बनाने में उपयोग में नहीं लेना चाहिए। बंध निर्माण में 15 सेमी. मोटी तहों में मिट्टी डालते हुए उसे पूरी तरह दुरमुट अथवा अन्य साधनों से कूट कर या कुचलकर जमायें। बंध के आकार को मापने के लिए उचित परिमाण के फरमे उपयोग में लिए जाते हैं। बंध के ऊपरी हिस्से की एवं दोनों तरफ की भुजाओं को अच्छी प्रकार काट छांटकर व कूटकर अन्ततोगत्वा उपयुक्त एवं वांछित आकार देना चाहिए।

पशुओं के आवागमन के लिए ढाल अथवा खुर्रा और आवश्यकता से अधिक जल की सुरक्षित निकासी हेतु उत्प्लावन वीयर ;जम्मपतद्ध बना दिए जायें। अपरदन से सुरक्षा हेतु इनका पत्थरों के टुकड़ों से पिचिंग कर देना चाहिये।

समोच्य बंध

मिट्टी के बंध जिनका निर्माण समोच्य रेखा से थोड़ा अतिक्रम करते हुए किया जाता है उन्हें समोच्य बंध कहते हैं। यह उपाय अनिश्चित एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए अत्यन्त लाभकारी है। विशेष रूप से कम ढालू भूमियों (1–6 प्रतिशत) पर उपयुक्त आकार के समोच्च बंध बहुत प्रभावी होते हैं। इस विधि का मुख्य लाभ यह है कि इसमें भूमि का लम्बा ढाल कई छोटे कम ढालू भागों में विभक्त हो जाता है, जिससे खेत के हर भाग में वर्षा के जल को मृदा में शोषित होने के लिए अधिक समय मिल जाता है।

समोच्च सामान्यतया 60 सेमी. ऊँचा, ऊपरी चौड़ाई 30 सेमी. तथा आधार 1.5 मीटर बनाते हैं।

प्यूरेटो रिको टेरेस

इस प्रकार की वेदिकाकाओं में बंध धीरे–धीरे बनते हैं जिसमें खेत के ऊपरी हिस्सो से अपरदन को जारी रखते

हुए अपरदित मृदा को निचले हिस्सों में समोच्च रेखा पर बनाते हैं। मिट्टी को ढाल के नीचे की ओर लाने के लिए प्रारंभ में 2–3 वर्ष तक सभी कर्षण क्रियायें ढाल के साथ करते हैं।

ये उन पहाड़ी क्षेत्रों में बनाई जाती है जहाँ ढाल 8 प्रतिशत से अधिक हो, मृदा की गहराई कम हो और पत्थर स्थानीय रूप से हो। पहाड़ी ढालों में पत्थरों वाली प्यूरेटोरिको टेरेस (पत्थर की डोल) भी ढाल के विपरीत समोच्च रेखा पर बनाई जाती है। मृदा को नीचे की ओर लाने के लिए उपरोक्त वर्णित प्रक्रिया को ही अपनाते हैं।

पत्थर की दीवार वाली वेदिकाएँ

पहाड़ी क्षेत्रों में विशेष रूप से घाटी क्षेत्र व प्राकृतिक जल निकास मार्गों में भी खेती की जाती है। इस प्रकार के क्षेत्रों में भूमि का कटाव रोकने तथा वर्षा जल के गिरने के स्थान पर ही जल संरक्षण हेतु पत्थर की दीवार वाली वेदिकाओं का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार की वेदिकाओं के निर्माण से ढालू क्षेत्रों में उपज वृद्धि में बढ़ोत्तरी होती है तथा यह भूमिकटाव रोकने के लिए भी विशेष रूप से प्रभावी होती है। एक वेदिका से दूसरी वेदिका का अन्तराल ढाल पर निर्भर होता है। ये वेदिकायें शुरूआत में अधिकतम एक मीटर की ऊँचाई तक ही बनानी चाहिए तथा प्राकृतिक कटाव के द्वारा मिट्टी के भराव के बाद इसकी ऊँचाई को बढ़ाना लाभप्रद रहता है। इस प्रकार की वेदिकाओं के ऊपर की ओर वानस्पतिक बंध भी लगाये जा सकते हैं।

कृषि अयोग्य भूमि पर भू एवं जल संरक्षण कार्य

जलग्रहण क्षेत्र में अकृषि भूमि से तात्पर्य उस भूमि से है जिस पर किसी न किसी कारणवश कृषि नहीं की जाती। कृषि नहीं किये जाने के कारणों में भूमि का ढलान बहुत अधिक होना, मिट्टी की गहराई कम होना, पथरीली भूमि, अत्यधिक भू क्षरण, मिट्टी का क्षारीय या लवणीय होना आदि हो सकते हैं। ढाल अधिक होने तथा पेड़ पौधों की संख्या कम होने के कारण इस प्रकार की भूमि में पानी तेजी से बहता है। इस कारण जमीन पानी की बहुत कम मात्रा सोख पाती है तथा भूक्षरण भी बहुत अधिक होता है जो निचले भाग में स्थित कृषि भूमि को प्रभावित करता है। अतः जलग्रहण क्षेत्रों में अकृषि भूमि के उपचार पर बहुत अधिक ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। वृक्षारोपण, चारागाह विकास आदि कार्यों के द्वारा इस प्रकार की भूमि का समुचित उपयोग किया जा सकता है। वृक्षारोपण या चारागाह विकास कार्य कराने से पहले अकृषि भूमि में बाड़ लगाकर भू एवं जल संरक्षण कार्य किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

अकृषि भूमि पर भू एवं जल संरक्षण की विधियाँ

अकृषि भूमि में भू एवं जल संरक्षण के लिये निम्नलिखित विधियां उपयोगी है।

1. 'वी' आकार की नालियां बनाना (V-ditch)
2. समोच्च रेखा पर आयताकार नाली (कन्टूर ट्रेंच) बनाना
3. समोच्च रेखा पर स्टेगर्ड नाली बनाना
4. समोच्च रेखा पर ग्रेडोनी बनाना
5. बाक्स बम पिट विधि से पानी को रोकना

'वी' (V) आकार की नालियां बनाना

वर्तमान में अकृषि भूमि पर किए जाने वाले कार्यों में यह कार्य सबसे महत्वपूर्ण हैं। इन नालियों का निर्माण सामान्यतया दस प्रतिशत तक ढलान को भूमि में किया जाता है। इनके निर्माण के लिए प्रारूप बनाने में जिन बातों का ध्यान रखना होता है वे क्षेत्र पर से बहने वाले पानी की मात्रा, नालियों के अनुप्रस्थ काट का आकार तथा नालियों की दो

लाईनों के बीच की दूरी। क्षेत्र से बहने वाले पानी की मात्रा क्षेत्र पर होने वाली वर्षा तथा क्षेत्र की स्थिति पर निर्भर करती है जिसका पता स्ट्रैनज सारणी से ज्ञात किया जाता है। श्टश नालियों की दो लाईनों की बीच की दूरी तथा उनका आकार इस प्रकार से तय किया जाता है कि दो लाईनों के बीच बहने वाला सारा पानी नीचे की लाईन में समा जाये।

वर्तमान में बनाई जा रही (V) नालियों की चौड़ाई 60 सेमी. तथा इनकी गहराई 20 सेमी. होती है। इस प्रकार इनका प्रति मीटर लम्बाई का आयतन 0.06 घन मीटर होता है। नाली से निकली हुई मिट्टी से नाली के निचले और एक अर्द्धवृत्ताकार बंध बनाया जाता है। इस बंध का आधार 30 सेमी. तथा इसकी ऊँचाई 25 सेमी. रखी जाती है।

समलम्बाकार नालियां बनाना

समोच्च रेखाओं पर इन नालियों का निर्माण जलग्रहण क्षेत्र के ऊपरी हिस्सों में अकृषिय भूमि पर किया जाता है। दस प्रतिशत से लगातार 30 प्रतिशत तक के ढाल के लिए इनका निर्माण उपयुक्त रहता है। इनका मुख्य कार्य पानी की गति को रोक कर भूक्षरण कम करना तथा भूमि में नमी की मात्रा बढ़ाना है जिससे भूमि पर लगाए जा रहे वृक्षों का पोषण हो सके। ऊपरी क्षेत्र से बहकर आने वाला पानी इन नालियों में समा जाता है अतः निचले क्षेत्रों में किये गये भू तथा जल संरक्षण कार्यों की रक्षा भी इनसे हो जाती है।

V नालियों की तरह इन नालियों में भी प्रारूप तैयार करते समय क्षेत्र से बहने वाले पानी की मात्रा नालियों का आकार तथा उनके बीच की दूरी पर ध्यान रखा जाता है। इनके आकार तथा इनकी लाईनों के बीच की दूरी के निर्धारण में वही तरीका अपनाया जाता है जो V नालियों के लिये अपनाया जाता है, ये नालियां समलम्बाकार अथवा आयताकार हो सकती है। वर्तमान समय में जब ये समलम्बाकार बनाई जाती है तब इनकी आधार पर चौड़ाई 0.30 मी. ऊपरी हिस्से पर चौड़ाई 0.45 तथा गहराई 0.30 मीटर रखी जाती है। जब ये आयतकार बनाई जाती है तब इनकी चौड़ाई 0.30 मीटर तथा गहराई 0.30 मीटर रखी जाती है।

अधिक ढलान के लिए समोच्च रेखाओं पर नालियां लगातार नहीं बनाई जाती है। इस स्थिति में नालियों के बीच कुछ स्थान छोड़ दिया जाता है। नीचे की समोच्च रेखाओं पर नालियां इस प्रकार बनाई जाती है कि ऊपर की लाइन के दो नालियों के बीच छूटे स्थान के नीचे इस लाईन का एक नाली आ जाए। इस प्रकार से बनाई गई स्टेगर्ड ट्रेन्चेज कहलाती है। ये सामान्यतया 0.30 मीटर चौड़ी 0.30 मीटर गहरी तथा 4 मीटर लम्बी बनाई जाती है तथा 30 प्रतिशत से अधिक ढाल वाले क्षेत्र के लिये उपयुक्त है।

ग्रेडोनी

भू तथा जल संरक्षण के लिए 30 प्रतिशत तक ढाल की भूमि में गेड़ोनियों का निर्माण मिट्टी की उपलब्धता को देखते हुए किया जाता है। ग्रेडोनी बहुत संकरा सीढ़ीनुमा निर्माण होता है जिसका ढाल पहाड़ी के ढाल के विपरीत रखा जाता है। इसकी चौड़ाई लगभग 1.0–1.5 मीटर रखी जाती है। खोदी गई मिट्टी से ग्रेडोनी के बाहरी ओर एक बंध का निर्माण किया जाता है। जिसकी ऊँचाई 20 से 30 सेमी. रखी जाती है। ग्रेडोनी का पहाड़ी की ढाल के विपरीत ढाल 7.5 : 1 के हिसाब से रखा जाता है।

ग्रेडोनी के निर्माण का प्रारूप तैयार करते समय भी ;टद्ध नालियों तथा समोच्च रेखाओं पर नालियों के प्रारूप निर्माण के समय ध्यान रखी गयी बातो पर ही ध्यान रखना होता है।

बॉक्स कम पिट

अधिक ढलान वाली भूमि पर जल संरक्षण करने का यह भी एक तरीका है। इनमें जहां वृक्ष लगाने के लिये गड्ढा खोदा जाता है। उसके ठीक ऊपर एक आयताकार गड्ढा और बनाया जाता है। इस आयताकार गड्ढे का कार्य बहने

वाले पानी को अपने अन्दर समाकर उससे नीचे स्थित पौधे को नमी पहुंचाना होता है। आयताकार गड्ढे सामान्यतया 1ण्5ग0ण्3ग0ण्3 मीटर आकार के तथा वृक्षारोपण के लिए 0.45 मीटर गहरे गड्ढे बनाये जाते हैं।

अपवर्तक नालियाँ

जलग्रहण क्षेत्र में कभी–कभी ऊँचे क्षेत्र में कार्य किये बिना परिस्थितिवश नीचे के क्षेत्र में कार्य पहले करने पड़ जाते हैं। बहुत सी बार कार्य होने के पश्चात् असाधारण वर्षा के कारण निचले क्षेत्रों में बहुत सारा पानी बहकर आता है जो कार्यों को प्रभावित करता है। उपरोक्त परिस्थितियों का सामना करने के लिए ऊपर का क्षेत्र जो सामान्यतया अकृषि का क्षेत्र होता है तथा नीचे का क्षेत्र जो कृषि का क्षेत्र होता है, इनके बीच अपवर्तक नालियों का निर्माण किया जाता है। इन नालियों का मुख्य उद्देश्य ऊपरी क्षेत्रों से आने वाले अपवाह जल की दिशा को बदलकर उसे सुरक्षित रूप से बाहर निकालना होता है। इन नालियों में भू क्षरण नहीं हो सके इसके लिये दूब, धास या पिचिंग की जाती है।

सात समंदर पार बिहार के नालंदा जिला के किसानों की चर्चा

बिहार राज्य के नालंदा जिले के सुमन्त कुमार तथा राकेश कुमार ने धान, आलू तथा प्याज उत्पादन में विश्व रिकार्ड तोड़ दिया है। अब इनकी चर्चा विश्व के सभी देशों में हो रही है। इनके द्वारा स्थापित कीर्तिमान नीचे की तालिका में दिया गया है। पूरा भारत आज इनकी कड़ी मेहनत के कारण गौरवान्वित है।

क्र.	किसान का नाम	फसल का नाम	नया विश्व कीर्तिमान	पूर्व विश्व कीर्तिमान
1.	श्री सुमन्त कुमार ग्राम/पोस्ट – दरवेशपुरा जिला – नालंदा (बिहार)	धान (सिनजेन्टा 6444)	224 क्विं./हे.	190 क्विं./हे. (चीन)
2.	श्री राकेश कुमार ग्राम – सोहडीह पोस्ट – सोहसराय जिला – नालंदा (बिहार)	आलू (कुफरी पुखराज)	1088 क्विं./हे.	450 क्विं./हे. (नीदरलैण्ड)
3.	श्री राकेश कुमार ग्राम – सोहडीह पोस्ट – सोहसराय जिला – नालंदा (बिहार)	प्याज (पटना रेट)	660 क्विं./हे.	650 क्विं./हे. (नीदरलैण्ड)

भतुआ की वैज्ञानिक खेती

vFkkr xkeh.k jkstxkj dk vf/kd l'tu

ehjk mbdk ,oe vk'krk"k dekj ek;l
,-dk-,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-i-½

भारत में भतुआ का विभिन्न नाम–शीश कुम्हड़ा या भूरा कुम्हड़ा या सफेद कुम्हड़ा ही अधिक प्रचलित है। भतुता की खेती उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल तथा दक्षिण भारत के राज्यों में होती है। यह एक व्यावसायिक महत्व की सब्जी है जिस पर पेठा तथा बड़ी उत्पादन उद्योग स्थापित हैं जिनके उत्पाद की देश–विदेश के बाजारों में भारी माँग है। इस सब्जी की खासियत यह है किः–

- इस की खेती अत्यन्त सरल है।
- इसकी बागवानी, पेड़ो पर छप्परों पर, खपड़ैलों पर तथा टिन आदि के घरों की छतों पर आसानी से की जाती है।
- इसके फल अधिक औशधीग गुणों से परिपूर्ण होते हैं।
- इस फसल पर कीट व्याधियों का प्रकोप नगण्य है।
- फलों का भंडारण लम्बी अवधि तक सम्भव है।
- कम लागत से अच्छी उपज प्राप्त हो जाती है।
- भतुआ की खेती अच्छी आय तथा रोजगार का अच्छा अभिप्राय है।

भतुआ की उन्नत किस्में

कोयम्बटूर–1 : यह मध्यम समय की 5–6 किग्रा. वजन की, कम बीज वाली किस्म है। इसकी फसल अवधि 140 दिन की होती है। यह किस्म तमिलनाडू कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर से विकसित की गई है।

कोयम्बटूर–2 : यह किस्म 120 दिन की अवधि की होती है। जिसका वनज 3 कि.ग्रा. होता है एवं यह अधिक उपज वाली तमिलनाडू कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर से विकसित की गई किस्म है।

मुडलियर : इसके फल आकार में बड़े एवं पेल ग्रीन रंग के होते हैं। यह किस्म भी तमिलनाडू कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर से विकसित की गई है।

भतुआ के लिए जलवायु

भतुआ गरम एवं ठंडी जलवायु की फसल है यह फसल पाले के प्रति सहनशील है। इस फसल के लिए अधिकतम तापमान 24–30^{0}C की आवश्यकता होती है। छोटे दिन कम प्रकाशकाल में मादा फूलों की संख्या बढ़ जाती है। गर्म ऊश्ण कटिबंधीय जलवायु में अधिक उपज के लिए आदर्श है। बीज के अंकुरण के लिए न्यूनतम तापमान 15–18^{0}C उपयुक्त माना गया है।

भूमि का चुनाव

भतुआ सभी प्रकार की मृदा में उगाया जा सकता है परंतु दोमट मृदा में कार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में पाई जाती है जो इस फसल के लिए उपयुक्त है तथा इस मृदा में जल धारण क्षमता तथा रंध्रावकाश उपयुक्त है जो श्वसन एवं वातन में महत्वपूर्ण है जिससे पौधे को वृद्धि में सहायता मिलती है। इस मृदा का अधिकतम पी.एच. 6.0–7.0 है। जो इस फसल के लिए उपयुक्त मानी गई है।

भूमि की तैयारी

खेत की प्रथम जुताई कल्टीवेयर से करके उसे 15–20 दिनों तक खुला छोड़ देना चाहिए जिससे भूमि में विभिन्न प्रकार के पाए जाने वाले फंगस, खरपतवार, कीड़े, बैक्टीरिया आदि सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति नष्ट हो जाते हैं तथा उसके बाद 3–4 जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करके पाटा चलाकर मिट्टी भुरभुरी बना लेनी चाहिए जिससे क्यारियाँ बनाने एवं पौधे लगाने में आसानी होती है। बीज की बुआई उथली क्यारियों में या गढ्ढ़ों में की जाती है प्रत्येक गढ्ढे में कम से कम 3–4 बीज डालना चाहिए।

बीजदर, बोआई का समय और दूरी

एक हेक्टेयर भूमि में भतुआ की बुवाई के लिए 5–6 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। यह मुख्य रूप से फरवरी–मार्च में नदियों के किनारे लगाया जाता है। इस फसल की कतार से कतार की दूरी 1.5 मीटर और पौधों से पौधों की दूरी 0.75 मीटर निर्धारित की गई है। तथा यह गर्मी और वर्षा ऋतु दोनों समय में उगाया जा सकता है। इसे जून–जुलाई में मुख्य खेत या मुख्य स्थान पर स्थानांतरित किया जाता है। जब पौधे 3–4 सप्ताह पुराने हो गए हों या उनकी लंबाई 15–20 c.m. हो जाए तब उनको मुख्य खेत में स्थानांतरित किया जाता है। तथा स्थानांतरित करने के लिए गढ्ढ़ों का आकार 30X30X30 से.मी. रखा जाता है।

निकाई–गुड़ाई

फसल में पाए जाने वाले खरपतवार का नियंत्रण आवश्यक है। इसलिए फसल की आवश्यकतानुसार निकाई–गुड़ाई किया जाता है। खरपतवार नियंत्रण की प्रक्रिया बुआई के 25–30 दिनों बाद की जाती है। खुर्पी द्वारा खरपतवार निकालकर अलग करें।

खाद एवं उर्वरक

भतुआ अंतिम जुताई से पहले 15–20 टन गोबर की खाद भूमि की तैयारी के समय देना चाहिए तथा उर्वरक की निर्धारित मात्रा जिसमें नाइट्रोजन 45–60 कि.ग्रा. फास्फोरस 50–60 कि.ग्रा. एवं पोटाश 60–80 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से देनी चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा दो भागों में विभाजित कर देना चाहिए पहली मात्रा बुआई के 35 दिनों तथा

दूसरी मात्रा 45 दिनों बाद देनी चाहिए।

सिंचाई

भतुआ की फसल में सिंचाई मौसम की दशा और भूमि में नमी की दशा एवं भूमि के प्रकार पर निर्भर करती है। मिट्टी की जलधारण क्षमता भी सिंचाई को प्रभावित करती है।

भतुआ में व्यापारिक रूप से सिंचाई की बेसिन विधि अपनाई जाती है जो हर तरह लाभदायक सिद्ध होती है। इस विधि में पानी की खपत कम होती है एवं खरपतवार नियंत्रण भी इस विधि के द्वारा हो जाता है। भतुआ को निम्नतम 6–7 दिन के अंतराल पर सिंचाई की आवश्यकता होती है।

फलों की तुड़ाई

फसल लगाने के 60–80 दिनों बाद पौधों पर फूल आना शुरू हो जाता है। फूल आने के 30–40 दिनों बाद फल परिपक्व हो जाते हैं। इस फसल को तैयार होने में लगभग 120–130 दिन लगते हैं। जब फलों के टेन्ड्रिल सूख जाये तक फलो को तोड़ लेना चाहिए। भतुआ की उन्नत किस्मों की औसत उपज 20–25 टन प्रति हेक्टेयर तक आसानी से प्राप्त हो जाती है।

आय व्यय का लेखा–जोखा

भतुआ की एक हेक्टर भूमि में उन्नत तौर तरीके से खेती करने पर कुल खर्च 20 हजार रूपये का आता है। यदि फलों को थोक भाव में 10 रूपये प्रति किलोग्राम बेचा जाय तो कुल 2,00,000/– रूपये मिलेगें जिसमें से लागत के 20 हजार रूपये निकाल देने पर शुद्ध आय के कुल एक लाख अस्सी हजार रूपये प्राप्त होते हैं जो एक अच्छी रकम है। इस फसल की खेती में प्रतिदिन 1500 रूपये की आय प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

+++

भिण्डी की नवीन किस्में

ehjk mbZds ,oe vk'kh"k dqekj ek;Z
,-d- ,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-iz-½

भिन्डी एक पौष्टिक सब्जी हैं इसके कच्चे मुलायम फलों का उपयोग सब्जी के रूप में लोकप्रिय है। भिन्डी उत्पादन की दृष्टि से भारत की छटवीं महत्वपूर्ण सब्जी है। इसकी खेती रबी तथा खरीफ दोनों मौसम में व्यवसायिक स्तर पर तथा गृह वाटिका में अत्यन्त लोकप्रिय है। भारत में भिण्डी की खेती 3.5 लाख हेक्टेयर भूमि में होती है। भिण्डी पर गहन अनुसंधान के फलस्वरूप पीत शिरा मोजेक विशाणु प्रतिरोधी किस्में विकसित की गई है। इसकी उत्पादकता 20 से 25 टन प्रति हेक्टेयर हो गयी हैं।

यदि किसान भाई भिण्डी की उन्नति किस्मों की अगात खेती वैज्ञानिक तौर तरीके से करें तो भारी मुनाफा प्रति इकाई भूमि से अन्य फसलों की तुलना में प्राप्त हो सकती हैं। आवश्यकता उन्नति किस्मों की खेती अगात करने की है जिससे बाजार में अच्छी कीमत प्राप्त होगी।

निम्नलिखित किस्मों में से किसान भाई एक किस्म चुनें तथा उसकी खेती वैज्ञानिक तरीके से करें।

क्र. सं.	किस्म	उपज क्वि0 / हे0	किस्म का विशेष गुण
1.	अर्का अभय	125	पीत शिरा मौजेक के लिए प्रतिरोधी किस्म
2.	अर्का अनामिका	125	फल पंचकोणीय, प्रथम तोड़ाई 55 दिनों बाद, पीत शिरा मौजेक के लिए प्रतिरोधी, दक्षिण भारत में उत्पादन हेतु बहुत अच्छी, उत्तरी भारत में उपज कम।
3.	अजाद क्रांति	125	पीत शिरा मौजेक के लिए प्रतिरोधी, उत्तर प्रदेश के लिये उपयुक्त
4.	ए.ए.डी.एफ.	130–150	पीत शिरा मौजेक के लिये प्रतिरोधी।
5.	गुजरात भिण्डी	70	फल 14–15 सें.मी. लम्बे, प्रथम तोड़ाई 55–60 दिन बाद
6.	टी.एन हाइब्रिड–8		द. भारत में अच्छी उपज, उत्तरी, उत्तरी भारत में भी संतोष जनक, पीत शिरा मौजेक के लिए प्रतिरोधी।
7.	पंजाब पद्मिनी	100–125	खेतों में पीत शिरा मौजेक के लिए प्रतिरोधी, जैसिड व चित्तीदार कपास की पहली तोड़ाई 8 सप्ताह बाद।
8.	पूसा सावनी	120–125	ग्रीष्म व वर्षा दोनों में अच्छी उपज, पहले पीत शिरा मौजेक के लिए प्रतिरोधी परन्तु अब क्षमता की कमी देखी गयी है।
9.	पूसा मखमली	80–100	12–15 सें.मी., लम्बे फल, पीत शिरा मौजेक के लिए सुग्राहा होने के कारण अब उत्पादन में नहीं।
10.	पूसा ए–4	100–120 (ग्रीष्म) 175 वर्षा	फल 12–15 सें.मी. लम्बे, पीत शिरा मौजेक विषाणु के लिए प्रतिरोधी तथा एफिड व जैसिक कीटों के लिए सहिष्णु, तना व प्ररोह भेदक का आक्रमण कम।
11.	एम.डी.यू.–		पूसा सावनी के गामा विकिरण से प्राप्त, फल लगभग 20 सें.मी. लम्बे, प्रथम तोड़ाई 43 दिन बाद।
12.	लाल भिण्डी	100	दक्षिण भारत के मैदानों हेतु, फल लाल रंग के।
13.	वर्षा उपहार	100	फल 18–20 सें.मी. लम्बे, प्रथम तोड़ाई 46–47 दिन बाद, पीत शिरा मौजेक के लिए प्रतिरोधी तथा खेत में ''लीफ हापर'' के लिए सहिष्णु।
14.	सी.ओ.–1		फल लाल रंग के, खेत में पीत शिरा मौजेक के लिए सहिष्णु तथा फल छेदक व चूर्णिल आसिता के लिए सुग्राहा।
15.	हिसार उन्नत	120–130	फल 15–18 सें.मी. लम्बे, पीत शिरा रोग के लिए प्रतिरोधी।

हरी खाद अर्थात स्वस्थ मृदा और सुखी किसान

lfer jk; tknk ,oe lquhy dqekj
,-d-,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-iz-½

सघन कृषि विकास नगदी फसलों के क्षेत्रफल बढ़ने के कारण तथा छोटी–छोटी जोत हो जाने से हरी खाद के प्रयोग में कमी आंकी गयी है। लेकिन बढ़ते ऊर्जा संकट, उर्वरकों की मूल्य वृद्धि आदि से मृदा के स्वास्थ्य एवं फसल उत्पादन प्रभावित हुआ है इन सबको को देखते हुए हरी खाद के महत्व को नकारा नहीं जा सकता हैं।

दहलनी फसलों को मिट्टी में दबाकर कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ाना ही हरी खाद है। हरी खाद से मृदा में जल धारण क्षमता, जल अवशोषण भुराभुरापन पोषकता एवं जीवांश कार्बन बढ़ता है। अतः हरी खाद से मृदा स्वास्थ्य अच्छा रहेगा, तो किसान के चेहरे पर मुस्काराहट रहेगी। हरी खाद की फसल में निम्न गुण होने चाहिए :–

1. फसल शीघ्र वृद्धि करने वाली हो।
2. हरी खाद के लिये ऐसी फसल होनी चाहिए, जिससे तना, शाखाएं और पत्तियां कोमल हो ताकि मिट्टी में शीघ्र अपघटित होकर प्रति हेक्टेयर अधिक से अधिक मात्रा में जीवांश नत्रजन मिल सकें।
3. फसल के वानस्पतिक भाग मुलायम हो जो आसानी से सड़ गल सके।
4. फसलें मूसला जड़ वाली हो ताकि गहराई से पोषक तत्वों को अवशोषण कर सके। क्षारीय एवं लवणीय मृदाओं मेंकअरी जड़ वाली फसल जल एवं वायु संचार बढ़ाती है।
5. फसल फलीदार होनी चाहिए, क्योंकि उसकी पौधों की जड़ों में ग्रन्थियां होती है। जिनमें रहने वाले बैक्टिरियां वायुमण्डल से स्वतन्त्र नत्रजन को मृदा में अधिक से अधिक स्थिरीकरण कर सकें।
6. दलहनी फसलों की जड़ों में उपस्थित सहजीवी जीवाणु ग्रन्थियों से वातावरण से मुक्त नत्रजन योगिकरण द्वारा पौधों को उपलब्ध कराते हैं।
7. फसल सूखा अवरोधी के साथ–साथ जलमग्नता को भी सहन पूर्वक उगायी जा सके।
8. बीज सस्ता हो और आसानी से उपलब्ध हो।
9. हरी खाद ऐसी हो जो कम उपजाऊ मृदा में भी सफलता पूर्वक उगायी जा सके।
10. रोग एवं कीट कम लगते हों तथा बीज उत्पादन क्षमता कम हो।
11. फसल हरी खाद के साथ–साथ फसलों को अन्य उपयोग में भी लायी जा सके।

<u>बोने का समय</u> :–

रबी फसल के लिए हरी खाद देनी है तो प्रथम वर्ष के प्रारम्भ होते ही जून–जुलाई में उपर्युक्त हरी खाद की फसल बोते हैं सिचाई की सुविधा होने पर इसे मई के दूसरे सप्ताह में भी बो सकते है।

<u>हरी खाद को पलटने की व्यवस्था</u> :–

फसल की एक विशेष अवस्था पर पलटाई करने से सबसे अधिक नत्रजन एवं जीवांश पदार्थ प्राप्त होते हैं। यह विशेष अवस्था या मिट्टी में मिलाने का ठीक समय वह है जबकि फसल कुछ परिपक्व हो और उसमें कही–कही फूल भी निकलने लगे हों और उसमें तना–पत्ती शाखाएं अधिक कोमल रसदार हो। इस अवस्था में फसल से रस युक्त कार्बनिक पदार्थ की मात्रा सबसे अधिक होती है तथा कार्बन व नत्रजन अनुपात भी कम रहता है। ऐसी अवस्था में हरी खाद की फसल को मिट्टी में दबाने से विघटन शीघ्रता से होता है। जिनमें नत्रजन तथा पौधों के अन्य पोषक तत्व ऐसी अवस्था में

आते है कि आने वाली फसले उससे अधिक लाभ उठा सकती हैं।

हरी खाद के लिए उपर्युक्त फसलों सनई एवं ढैंचा की उन्नतषील प्रजातियां :–

नरेन्द्र सनई–1, पंत ढैंचा :–

उर्वरक प्रबंधन :–

हरी खाद के लिए प्रयोग की जाने वाली दलहनी फसलों में भूमि में सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता का बढ़ाने के लिए विशिश्ट राइजोबियम का टीका लगाना उपयोगी होता है। कम एवं सामान्य उर्वरता वाली मिट्टी में 10–15 किग्रा0 नत्रजन तथा 40–50 किग्रा0 फॉसफोरस प्रति हे0 उर्वरक के रूप में देने से ये फसले परिस्थितकीय संतुलन बनाये रखने में अत्यन्त सहायक होती है।

हरी खाद के रूप में उगायी जाने वाली फसलों का विवरण :–

फसल का नाम	बुवई का समय	बीज की मात्रा (किग्रा0 प्रति हे0)	अनुमानित हरी खाद उपज (हे0 प्रति टन	अनुमानित नत्रजन (किग्रा0 प्रति हे0)
सनई	अप्रैल – जुलाई	50 – 60	20 – 30	60 – 100
ढैंचा	अप्रैल – जुलाई	40–50	20 – 30	80 – 100
लेबिया	अप्रैल – जुलाई	45 – 55	15 – 20	70 – 90
उर्द	जून – जुलाई	20 – 25	10 – 15	40 – 50
मूंग	जून – जुलाई	20 – 40	10 – 15	35 – 50
ग्वार	अप्रैल – जुलाई	30 – 40	20 – 25	60 – 70
मटर	अक्टूबर – नवम्बर	80 – 100	25 – 27	60 – 70
सैंजी	अक्टूबर – नवम्बर	25 – 30	25 – 30	120 – 140

हरी खाद की गुणवत्ता कैसे बढाएं ?

1. जलवायु एवं मृदा दशाओं के आधार पर उपयुक्त फसल का चुनाव करना आवश्यक होता है जलमग्न तथा क्षारीय एवं लवणीय मृदानलरी में ढैंचा तथा सामान्य मृदाओं में सनई एवं ढैंचा दोनों फसलों से अच्छी गुणवत्ता वाली हरी खाद प्राप्त होती है। मूंग, उर्द, लोबिया आदि अन्य फसलों से अपेक्षाकृत कम अच्छी खाद मिलती है।
2. अधिकतम हरी खाद प्राप्त करने के लिए फसल की पलटायी या जुताई बुवाई के 6–8 सप्ताह के बाद करना चाहिए। आयु बढ़ने से पौधों की शाखाओं में रेशे की मात्रा बढ़ जाती है। जिससे जैव पदार्थ के अपघटन में अधिक समय लगता है।
3. जिन क्षेत्रों में धान की खेती होती है वहां जलवायु नम तथा तापमान अधिक होने से अपघटन क्रिया तेज होती है। अतः खेत में हरी खाद की फसल के पलटायी के तुरन्त बाद धान रोपाई की जा सकती है। लेकिन इसके लिए फसल की आयु 40–45 दिन से अधिक नहीं होनी चाहिए। लवणीय व क्षारीय मृदाओं में ढेचों को 45 दिन की

अवस्था में ही पलटने के बाद धान की रोपाई करने से अधिकतम उपज प्राप्त होती है।

4. कम उर्वरता वाली मृदाओं में नत्रजन का 15–20 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर प्रयोग करना उपयोगी होता है। राइजोबियम कल्चर का प्रयोग करने से नाइट्रोजन स्थिरीकरण सहजीवी जीवाणुओं की क्रियाशीलता को बढ़ाता है।

<u>हरी खाद के फसलों में महत्व</u> :–

1. हरी खाद से प्रयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थ तथा नत्रजन की मात्रा में वृद्धि होती है।
2. हरी खाद के प्रयोग में जाने आने वाली दलहनी फसलों की जड़ों की ग्रन्थियों में जीवाणु होते है जो वायुमण्डल से नत्रजन का स्थिरीकरण करके मृदा में स्थापित करते है।
3. गहरी जड़ वाली हरी खाद की फसलें मृदा की निचली परतों से पोषक तत्वों का अब शोशक करती हैं। तथा मृदा की उपरी सतह में विच्छेदित होकर इन पोषको तत्वों को छोड़ देती है।
4. नत्रजन के अतिरिक्त अन्य पोषक तत्वों की मात्रा में वृद्धि होती हैं।
5. हरी खाद वाली फसले अत्यन्त शीघ्रता से उगती है और इस प्रकार खरपतवारों की सम्भावित वृद्धि को पर्याप्त सीमा तक कम करती है।
6. रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से उत्पन्न दोश कम हो जाते हैं।
7. निश्रालन (लिचिंग) के द्वारा विलय पोषक तत्व मृदा की निचली सतह में नहीं जा पाते हैं।

हरी खाद की फसल कट जाने के बाद अवशेष पदार्थो का सड़ना गलना होता है जिससे भूमि में दरारे बन जाती है। इन दरारों से मृदा में वायु संचार तथा जल रिसाव में सुधार होता है।

भारतीय कृषि विकास में कृषि अभियंत्रण की भूमिका

Mk- lnkpkjh flag] bath- vthr ljkBk] bath- vukfedk >k] bath- jkt:'k dekj feJk] bath- dekj lkuh
,-d-,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-i-½

भारत में 70 प्रतिशत से अधिक लोग कृषि तथा कृषि अभियांत्रिकी से जुड़कर भारत के विकास में अपना योगदान दे रहे हैं। कृषि अभियांत्रिकी भारत की कृषि व्यवस्था से जुड़कर बहुमूल्य योगदान दे रहा है। कृषि अभियांत्रिकी का प्रथम शब्द कृषि है जो खेती तथा इससे पैदा होने वाली फसलों तथा मृदा को समाहित किया हुआ है तो वहीं अभियांत्रिकी शब्द मैकेनिकल, सिविल तथा इलेक्ट्रानिक इंजीनियरिंग को समेटा हुआ है। इन सभी इंजीनियरिंग सिद्धांतों का उपयोग कर मिट्टी पानी तथा मशीनों का प्रभावी उपयोग विकास की राह में मील का पत्थर साबित हो रहा है।

कृषि परिदृश्य में पिछले दो दशकों से एक बड़ा परिवर्तन देखा जा रहा है। वैश्विक तापमान वृद्धि, जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों की कमी, मानवरूपी कुशल श्रमिकों की कमी तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण व्यापार प्रतिस्पर्धा, खाद्य भण्डारों की कमी, तथा कृषि में कम लाभ जैसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गई हैं। इन रोमांचक चुनौतियों के समाधान हेतु कृषि ज्ञान तथा अग्रणी प्रौद्योगिकी को महत्व देना अति आवश्यक हो गया है।

अगली हरित क्रांति का आगमन तब होगा जब हम कृषि अभियांत्रिकी के सिद्धांतों तथा उपयोग हमारे कृषि विकास में सम्मिलित करेंगे। उत्तरी भारत तथा अन्य विकासशील देश जैसे अमेरिका, जर्मनी तथा न्यूजीलैंड आदि कृषि अभियांत्रिकी को मजबूत आधार के तौर पर सम्मिलित कर चुके हैं ताकि कृषि को लाभप्रद व्यवसाय बनाया जा सके।

कृषि अभियंता अच्छी तकनीक तथा मशीनों का उपयोग कर कृषि उत्पादन को और अधिक बढ़ा रहे हैं। कृषि पद्धति को और अधिक लाभप्रद बनाने के लिये अधिक से अधिक कृषि उपकरणों तथा ऊर्जावान स्त्रोत का उपयोग अति आवश्यक हो गया है। कृषि अभियांत्रिकी इन्हीं बातों को ध्यान रखते हुये तीन मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) कृषि यंत्र षक्ति

(2) प्रस्संकरण अभियांत्रिकी (फसल एवं खाद्य प्रस्संकरण तकनीक)

(3) मृदा एवं जल अभियांत्रिकी

(1) कृषि यंत्र षक्ति : कृषि का यंत्रीकरण हमारे लिये आज आवश्यक आवश्यकता है। आज कृषि में प्रति हेक्टेयर मात्र 0.741 अश्वशक्ति ही उपलब्ध है जिसे बढ़ाना आवश्यक है। आज ट्रेक्टर पावर टिलर एवं कृषि इंजन पम्पसेट की मांग बढ़ रही है। कृषि में मृदा संरक्षण का महत्व भी बढ़ता जा रहा है। इसके लिये स्क्रेपर, ड्रोजर, बुलड्रोजर आदि की बढ़ोत्तरी हो रही है। ऊर्जा के नवीकरणीय स्त्रोत जैसे पवन चक्कियां, सूर्य की ऊर्जा चलित खाना पकाने, पानी गर्म करने, विद्युत मोटर चलाने की मशीनें आदि तथा जैव ऊर्जा वाले बायोगैस संयंत्र, प्रोड्यूसर गैस संयंत्र, अल्कोहल ईधन संयंत्र इत्यादि कृषि के क्षेत्र में योगदान दे रहे हैं। यांत्रिक कटाई उपकरण, संग्रहण हेतु यंत्र, गहाई यंत्र, निराई यंत्र, टपक एवं फौव्वारा सिंचाई यंत्र, विद्युत मोटर एवं कम्प्यूटरीकरण से आज कृषि की उपज बढ़ाई जा रही है। बड़े बांध, चेक डैम, स्टाप डैम आदि से जल भरण क्षमता बढ़ाना भी आवश्यक है। पर्यावरण की दृष्टि से कृषि में प्रयुक्त इंजनों, गहरी जुताई से मृदा के लाभकारी जीवाणु मरने से बचाने की विधा, अधिक

हुई सिंचाई (पानी) से दलदली जमीन का नियंत्रण आदि के क्षेत्र में कृषि इंजीनियरों का काम बढ़ गया है।

(2) कृषि प्रस्संकरण तकनीक : कृषि एवं खाद्य प्रस्संकरण तकनीक को हम कुछ इस तरह से परिभाशित कर सकते हैं कि तकनीकी दक्षता एवं आर्थिक कुशलता से पूर्ण गतिविधियों का वह समूह है, जो कि इन समस्त उत्पाद जो कि खेती से (अनाज, फल, सब्जी), पशुओं से (दूध, अण्डा, मांस इत्यादि) तथा वनों से प्राप्त होते हैं, को संरक्षित एवं संवर्धित कर उन्हें भोजन, ईंधन, वस्त्र तथा उद्योगों के कच्चे माल के लिये उपयोगी बनाता है।

कृषि प्रस्संकरण, उपरोक्त समस्त उत्पादों को कटाई के बाद की जाने वाली समस्त प्रक्रियाओं जैसे कि गुणवत्ता नियंत्रण, मात्रा एवं आपूर्ति नियंत्रण, पैकेजिंग, मूल्य संवर्धन इत्यादि का समिश्रण है।

भारत में कुल उत्पादन का लगभग 10 प्रतिशत से अधिक भाग अपने उपयोग होने के पूर्व ही नष्ट हो जाता है। राश्ट्र की बढ़ती हुई जनसंख्या के सापेक्ष में सबसे महत्वपूर्ण कड़ी खाद्य प्रस्संकर ही है जो कि इस संतुलन को बनाए रखती है।

आज के युग में यह क्षेत्र बड़े उद्योगों के साथ–साथ स्थानीय स्तर पर कुटीर उद्योगों हेतु भी अपार संभावनाओं के द्वार खोल रहा है, जो कि रोजगार के अवसरों को बढ़ाते हुए राश्ट्र की अर्थव्यवस्था को भी सुदृढ़ कर रहा है।

(3) मृदा एवं जल अभियांत्रिकी : सिंचाई की परिकल्पना एवं उसकी नियमित मात्रा में फसल को उपलब्ध कराना तथा समयानुसार फसल में प्रयोग करने के निमृदा का जल से सम्बन्धित कारकों एवं पौधें को मृदा एवं जन से सम्बंध का आवश्यक ज्ञान होना बहुत महत्वपूर्ण हे। इन्हीं आवश्यकताओं का ज्ञान तथा मृदा तथा जल अभियांत्रिकी से ही सम्भव हुआ है। भारवर्ष में सिंचाई क्षेत्र ने बहुत उन्नति की है जो सिंचित क्षेत्र भारत में वर्ष 1965–66 में केवल 26.6 मिलियन हेक्टेयर था आज वह बढ़कर कई गुना हो गया है। क्षेत्र में फसल प्रणाली आदि फसल की आवश्यकता जल मांग की गणना अति आवश्यक है।

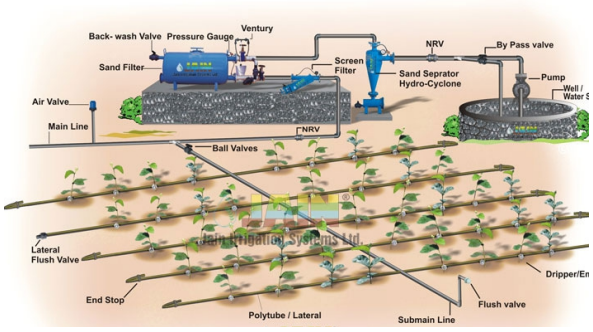

भारतीय कृषि के विकास में कृषि अभियंत्रण की आवश्यकता दिनों दिन बढ़ती जा रही है। आज छोटे छोटे कार्यों से लेकर कृषि रसायनों का छिड़काव हेलीकाप्टर से भी किया जाता है। बेहड़ कृश्यकरण में बीजों की बुवाई भी हेलीकाप्टर से की जा रही है। बड़े बड़े स्प्रेयर एवं डस्टर बड़े पेड़ों के लिये विकसित किये गये हैं जहां उच्च अश्वशक्ति के इंजन एवं मोटर लगाये जाते हैं। पोलीहाउस एवं ग्रीन हाउस जो सब्जी फल आदि उत्पाादन हेतु बनाये जाते हैं वहां कृषि अभियंत्रण की देशभर में बड़ी भूमिका है। कम्प्यूटरीकरण में कृषि अभियंत्रण की महत्वपूर्ण भूमिका है आज की कृषि में कम्प्यूटरीकरण महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। कृषि अभियंत्रण आज ''जेनेटिक इंजीनियरी'' एवं जीन सम्बन्धित फसलों के विकास के लिये महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। सूक्ष्म जीवाणु जो आज के युग में महत्वपूर्ण येागदान के लिये आवश्यक है उसमें भी कृषि विकास के लिये कृषि अभियंताओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसी को देखते हुये आज कई देशों में कृषि इंजीनियरी को बायोइंजीनियरी के नाम से जाना जाता है। इससे स्पश्ट है कि भारतीय कृषि विकास में कृषि अभियंत्रण की महत्वपूर्ण भूमिका है।

गाजर के स्वादिष्ट व्यंजन

jktfuf/k flag] x`g foKku foHkkx
'kkldh; dU;k egkfo|ky;] lruk ¼e-iz-½

भारत में परंपराओं तथा संस्कृति का हमारे दैनिक जीवन में विशिश्ट महत्व है। भारत में महिलाओं की भूमिका परिवार में महत्वपूर्ण है। लगातार बढ़ती महंगाई ने महिलाओं के लिए अनेक परेशानियाँ उत्पन्न कर दी हैं। ऐसे में अगर महिलाएं परिरक्षण का उपयोग कर स्थानीय स्तर पर उपलब्ध फलों एवं सब्जियों का उपयोग कर घरेलू स्तर पर उत्पादों का निर्माण करती हैं तो वे अपने परिवार को संतुलित आहार उपलब्ध कराने में मददगार होंगी। वे अपने परिवार के सदस्यों की रूचि के अनुसार भोज्य पदार्थ निर्मित कर आपसी प्रेम भाव में वृद्धि कर सकती हैं। अगर वे अपनी दक्षता का उत्कृश्ट प्रदर्शन करने में सफल होती हैं तो इस दक्षता का प्रयोग कर परिवार की मजबूत अर्थव्यवस्था का सृजन कर सकती हैं।

यह सामान्य सत्य है कि एक क्विंटल फल व सब्जियां पैदा करना, एक क्विंटल फल व सब्जियों को खराब होने से बचा लेने की तुलना में महंगा और जटिल कार्य है। यह देखा जाता है कि कुल उत्पादन का 20–30 प्रतिशत भाग खराब हो जाता है जो मानव उपयोग में नहीं आता है। अतः फल तथा सब्जियों के उत्पादन के साथ–साथ उनके परिरक्षण तकनीक का भी विकास किया जाना अनिवार्य है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर गाजर का उपयोग कर विभिन्न व्यंजनों की निर्माण विधि निम्नानुसार दी जा रही है। इन निर्माण विधियों का उपयोग कर घरेलू स्तर पर हर परिवार द्वारा आहार में गाजर का उपयोग बढ़ाया जाए जो सामुदाय को विटामिन ए की कमी के अभिशाप से मुक्त करने की महत्वपूर्ण पहल होगी।

<u>गाजर की कैनिंग</u> :–

भारत में दो किस्म गुलाबी और पीले रंग की गाजर उगायी जाती है। गाजर की कैनिंग में अधिकांशतः पीली किस्म की गाजर उपयोग में लायी जाती है। मुलायम और छोटी गाजर को धेकर उसका पतला छिलका व जड़ें निकाल दी जाती हैं। छीलने के बाद उन्हें साबुत या टुकड़ों को 5 मिनट ब्लांचिंग कीजिये, फिर डिब्बों में भरें एवं 2 प्रतिशत नमक का घोल (ब्राइन) भरें एवं निर्वातन कीजिये।

<u>गाजर का निर्जलीकरण</u> :–

पीले किस्म की गाजर को छीलकर, जल में अच्छी तरह से धो लें, फिर 0.5 सेमी मोटे टुकड़े काटिये। इन टुकड़ों को 2 प्रतिशत नमक के घोल में 2–4 मिनट तक ब्लांचिंग कीजिये। 5 से 7 किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर में फैलाकर 155 से 160वथ पर निर्जलीकरण (सुखा लेने) का कार्य सम्पन्न करें। सूखने में 14 से 16 घंटे लगते हैं।

<u>गाजर का जैम</u> :–

आवश्यक सामग्री –

गाजर	– 1 किलो
शक्कर	– 1 किलो
साइट्रिक एसिड	– 10 ग्राम
जल	– 1.5 लीटर

विधि – मुलायम किस्म की गाजर लीजिये। नीचे का सख्त भाग काटकर, छील लें व छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर जल के साथ आधा घंटा पकायें जब तक गाजर मुलायम न हो जाएं। फिर गूदा तैयार करें, शक्कर व साइट्रिक एसिड मिलाकर पकाएं। प्लेट टेस्ट आने पर गरम–गरम कांज की छोटी बोतलों में भरें।

गाजर का मुरब्बा :– नारंगी रंग की गूदेदार मुलायम गाजर का चुनाव करें। पतला छीलकर धो लें। फिर गाजर को गोदें और इच्छानुसार आकार में काटें। 5 से 10 मिनट तक जल में उबालकर मुलायम कीजिये। टुकड़ों की मात्रा से 1.5 गुनी शक्कर लेकर मुरब्बा तैयार किया जा सकता है।

गाजर गोभी का अचार :–

आवश्यक सामग्री –

गोभी	– 1 किलो
गाजर	– .5 किलो
शलजम	– .5 किलो
सरसों का तेल	– 400 ग्राम
अदरक	– 100 ग्राम
लहसुन	– 50 ग्राम
राई का पाउडर	– 80 ग्राम
सौंफ का पाउडर	– 50–60 ग्राम
पिसी हल्दी	– 50–60 ग्राम
पिसी मिर्च	– 50 ग्राम
गरम मसाला	– 40 ग्राम
नमक	– 300 ग्राम
एसीटिक एसिड	– 10 मि.ली./किलो अचार
सोडियम बेन्जोएट	– 1 ग्राम/किलो अचार

विधि – सभी सब्जियों को साफ कर लें, धोकर, छीलकर, इच्छानुसार काट लें। उबलते पानी में 10–15 मिनट ब्लाच करें व पानी से निधारकर धूप में सुखा लें। अदरक, लहसुन छीलकर बारीक काटें। फिर तेल गरम करके इसमें डालकर हल्का गुलाबी रंग आने तक तलें, आग पर से अलग करें व इसमें नमक, मसाले व परिरक्षक पदार्थों को मिला दें फिर सब्जियों को डालकर अच्छे से चलाएं। कांच की बरनी में संग्रहित करें।

मिश्रित सब्जी सिरके में :–

आवश्यक सामग्री –

गोभी	– 1 किलो
गाजर	– .5 किलो
छोटी, तीखी मिर्च	– 250 ग्राम
प्याज	– 250 ग्राम
सफेद सिरका	– 1.5 लीटर
नमक	– 250 ग्राम

विधि – सब्जियों को साफ करके, छीलकर, आवश्यकतानुसार छोटे टुकड़ों में काट लें। मिर्च व प्याज साबुत ही रखें। सब्जियों को 10–15 मिनट बाफ लें। सब्जियों को निकाल लें और बराबर मात्रा में पानी मिलायें, मिर्च भी सब्जियों के साथ मिला दें। नमक डालकर, रात भर मुलायम होने के लिये रख दें। इससे किण्वन की प्रक्रिया संपन्न होगी। दूसरे दिन नमक के पानी से सब्जियों को निकालकर 4 प्रतिशत सिरका का घोल मिला दें। इनका प्रयोग सलाद के रूप में किया जा सकता है। गर्मियों में गोभी और गाजर के स्थान पर ककड़ी का प्रयोग किया जा सकता है।

गाजर का हलवा :–

आवश्यक सामग्री –

गाजर	– 1 किलो
शक्कर	– 400 ग्राम
घी	– 100 ग्राम
खोवा	– 1 पाव
सूखे मेवे	– इच्छानुसार

विधि – गाजर छीलकर, किस लें। किसे हुए गाजर को घी से भूनें, मुलायम होने पर शक्कर डालकर चलाते जायें, जब शक्कर सूखने लगे तो खोवा को मसलकर मिलायें, कड़ाही से जब छूटने लगे तो सूखे मेवे डालकर परोसें।

गाजर की बर्फी :–

आवश्यक सामग्री –

किसी हुई गाजर	– 1 किलो
शक्कर	– 700 ग्राम
नारियल का चूरा	– 300–400 ग्राम
मक्खन या घी	– 100 ग्राम

विधि – किसी हुई गाजर को मुलायम होने तक पकाएं जब पानी न बचे तो घी डालकर भूनें व शक्कर मिलाएं। फिर आधा नारियल का चूरा डालकर लगातार चलाते जाएं, जब बर्फी पूरी पक जाए व कड़ाही छोड़ दे तो एक थाली में घी डालकर 25 प्रतिशत नारियल का चूरा उस पर फैलायें फिर गाजर की तह लगाएं इसके ऊपर बचा हुआ 25 प्रतिशत नारियल का चूरा डालकर दबाएं जब बर्फी जम जाए तो इच्छानुसार आकृति में काट कर सर्व करें।

+++

कागजी नींबू की वैज्ञानिक खेती

jkt:'k fl:g ,o: vf[ky:'k cU l t]
m|ku foKku foHkkx] Ñf"k egkfo|ky ;] jhok ¼e-i:-½

नींबू प्रजाति के फलों में मुख्यतः सन्तरा, माल्टा, नींबू, चकोतरा, ग्रेपफ्रूट आदि की बागवानी मध्यप्रदेश में होती है जिसमें कागजी नींबू अपने अद्‌भुत गुणों के कारण अधिक लोकप्रिय है। नींबू के फलों में विटामिन ए, बी, सी एवं खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। नींबू के फल ताजा खाये जाने के अतिरिक्त साइट्रिक अम्ल, परिरक्षित रस, पेय पदार्थ, मार्मलेड, पेक्विन, अचार आदि बनाने में उपयोग होता है।

संतरा और स्वीट औरेंज के बाद कागजी नींबू तीसरा सबसे महत्वपूर्ण उगाया जाने वाला फल है। भारत का विश्व में कागजी नींबू पैदा करने में पहला स्थान है। इस समूह के फल विटामिन तथा प्रति–ऑक्सीकारकों से भरपूर होते हैं।

किस्में : कागजी कला, पन्त लेमन–1, प्रमालिनी, विक्रम, चक्रधर, पी.के.एम–1, सेलेक्सन–49, सीडलेस लाइम इत्यादि।

नर्सरी तैयार करना : नींबू वर्गीय पौधों के प्रवर्धन की अनेक विधियां हैं उनमें से कुछ मुख्य व्यावसायिक विधियों का विवरण निम्न है।

बीज द्वारा नर्सरी तैयार करना : कागजी नींबू की मुख्यतः बीज द्वारा पौध तैयार की जाती है। जो कि मूलवृंत के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। बीज द्वारा तैयार पौध में विशमता पाई जाती है जिससे समान प्रकार के फल तथा अच्छी उपज नहीं मिलती है। बुवाई से पहले बीजों को वेन्जाइल ऐडनीन (10 पीपीएम) या जिब्रेलिक अम्ल (40 पीपीएम) में 12 घण्टे तक उपचारित करना चाहिए।

कायिक प्रवर्धन द्वारा नर्सरी तैयार करना : कागजी नींबू का प्रवर्धन कृंतन, गूटी विधि और कालिकायन द्वारा किया जा सकता है। कायिक प्रवर्धन में कलिकायन बहुत प्रचलित तथा उपयोगी विधि है।

सस्य क्रियाएं : कागजी नींबू की रोपण दूरी 4–6 मीटर तक होती है। सघन बागवानी के लिए 3ग्3 मीटर की दूरी रखते हैं। पौध रोपाई के लिए मई महीने में 90–100 सेमी.3 आकार के गड्‌ढे खोद लें तथा इस गड्‌ढे की ऊपरी सतह की मिट्‌टी में उतनी ही मात्रा की गोबर की खाद मिलाकर जून के महीने में भर दें। कागजी नींबू का रोपण मानसून के समय (जून–अगस्त) करते हैं। गड्‌ढे को भरने के लिए सड़ी गोबर की खाद और बोन मील के मिश्रण का प्रयोग भी करते हैं।

उर्वरक व खाद : नाइट्रोजन की पूर्ति गोबर की सड़ी हुई खाद अथवा कम्पोस्ट (25 प्रतिशत), खली (25 प्रतिशत) तथा रासायनिक उर्वरक (50 प्रतिशत) से होती है जबकि फॉस्फोरस और पोटाश की पूर्ति सुपर फॉस्फेट तथा सल्फेट ऑफ पोटाश से करना चाहिए। खाद तथा उर्वरक पौधों के मुख्य तने से 20–30 सेमी. जगह छोड़कर डालने चाहिए एवं पूर्ण विकसित पौधे को करीब 300 ग्राम नत्रजन 250 ग्राम फास्फोरस एवं 300 ग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है।

खरपतवार नियंत्रण : खरपतवार को थाला से हटा देना चाहिए जिससे कि पौधे की बढ़वार लगातार होती रहे। नींबू वर्गीय बाग में मुख्यतः मोनोयूरान अथवा डायूरान का 2 किग्रा. 500 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करते हैं।

तुड़ाई एवं उपज : कागजी नींबू की तुड़ाई उत्तर भारत में जून–जुलाई में की जाती है। तुड़ाई के लिए कैंची का प्रयोग करते हैं जिससे कम से कम हानि हो। कागजी नींबू की उपज लगभग 300–500 फल प्रति पेड़ प्रति वर्ष आंकी गई है।

+++

विषाणु क्या है?

lqj'k dqekj ;kno] vfHk"kd dqekj x<s] uhjt oekZ
,-dk-,l- fo'ofo|ky;] lruk&485001 ¼e-iz-½

विषाणु एक केन्द्रक प्रोटीन या न्यूक्लियोप्रोटीन होता है। जिसमें रोग उत्पन्न करने की योग्यता होती है। यह केवल जीवित कोशिकाओं में गुणन करता है और आकार में अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण प्रकाश सूक्ष्मदर्शी द्वारा दिखायी नहीं देता है। सभी विषाणु कोशिकाओं में परजीवी होते हैं, और सभी प्रकार के सजीव जीवों, एक कोशीय सूक्ष्म जीवों से लेकर बड़े पौधों एवम् जन्तुओं में तरह तरह के रोग उत्पन्न करते हैं।

स्टीवेन्स (1983) के अनुसार ''विषाणु अतिसूक्ष्मदर्शीय कण होते हैं, जो न्यूक्लीक अम्ल (आर.एन.ए. अथवा डी.एन.ए.) के एक या अधिक खंडों से बनते हैं। यह कण अकेले या समान संरचनाओं की उपस्थिति में, केवल जीवित कोशिकाओं के भीतर, कम से कम परपोशी कोशिका एन्जाइमों में से कुछ का उपयोग करके गुणन या पुनरावृत्ति करते हैं।''

विषाणु सब्जियों पर क्या असर करता है?

विषाणु से संक्रमित पौधों पर विभिन्न प्रकार के रोग लक्षण प्रकट होते हैं। विषाणु के संक्रमण के मुख्य प्रभाव पौधों की वृद्धि, ओज एवम् सस्य शक्ति पर पड़ते हैं। इनमें से मुख्य प्रभाव पौधे की वृद्धि दर का घट जाना है, जिसके परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण पौधा विभिन्न अंगों में छोटा अथवा बौना रह जाता है। विषाणु का स्पश्ट प्रभाव पौधे के हरे भागों में भी पड़ता है। इसके हरे भाग पीले पड़ जाते हैं। विषाणुओं द्वारा उत्पन्न लक्षण निम्न हैं :–

1. शिराउद्रभासन एवम् शिरापट्टन : सक्रमित पत्तियों में चितकवरापन होता है, जब शिराओं के आस–पास का पर्णहरित समाप्त हो जाता है तो ऐसे चिन्ह शिरा उद्रभासन कहलाते हैं एवम् शिरापट्टन में शिरा के साथ–साथ हरिमाहिन ऊतकों की चौड़ी पट्टियां बन जाती हैं।

2. वलय चित्तियां : जब चित्तियां विभिन्न प्रकार की हरिमाहीनता और ऊतकक्षय को प्रदर्शित करती हैं और जब यह गोल हरिमाहीन क्षेत्रों के रूप में होती हैं, वलय चित्तियां कहलाती हैं।

3. ऊतकक्षय : संक्रमित पत्तियों की ऊतकों की मृत्यु हो जाती है। एक विशेष स्थान में सीमित रहकर वहां के ऊतकों को मार देते हैं। इस प्रकार के ऊतकक्षयी चित्तियों को स्थानीय ऊतकक्षय कहते हैं।

4. वृद्धिरोधन : पौधों की वृद्धि रुक जाती है, तथा वह छोटे या बौने रह जाते हैं।

5. अत्यधिक वृद्धि : कुछ विषाणु अतिवृद्धिय ऊतकों के समूहों को बनाने में बढ़ावा देते हैं।

विषाणु जनित सब्जियों के रोगों की रोकथाम :–

1. बीज का चयन : बीजों का चयन सदैव रोगरहित पौधों से ही करना चाहिए।

2. कलमों, शल्ककंदों और कंदों का चयन : अनेक विषाणु रोगों का विकीर्णन कायिक भागों को बीज के रूप में प्रयोग करने से ही होता है, जैसे – आलू के विषाणु। अतः इनकी रोकथाम के लिए रोपण पदार्थों का चयन ऐसे पदार्थों से करना चाहिए जो संक्रमित न हों।

3. कंद – संसूचन (Tuber Indexing) : इस विधि में आलू के विषाणु रहित कंदों का चयन करने के लिए किया जाता है। इसमें स्वस्थ, ओजस्वी पौधों से कंदों का चुनाव किया जाता है।

4. रोगवाहक कीटों से सुरक्षा : अनेक पादक–विषाणु रोगी पौधों से स्वस्थ पौधों पर कीटों द्वारा फैलाये जाते हैं। अतः इन कीटों को समाप्त करके विषाणु रोगों की रोकथाम की जा सकती है।

5. खरपतवार परपोशियों को नष्ट करना : अनेक विषाणु रोग खरपतवार पर उत्पन्न होते हैं, जो फसल पर इनको उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। अतः खेतों में या आस–पास में खरपतवार नहीं उगने देना चाहिए।

6. रोग प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग : विषाणु जनित रोगों के नियंत्रण की सबसे उपयुक्त विधि प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग है।

7. ताप उपचार : जिन विषाणु जनित रोगों का संचरण कलम, कंद, शल्ककंद द्वारा होता है। इनको ताप उपचार द्वार सफलतापूर्वक नियन्त्रित किया गया है।

विषाणुजनित सब्जियों के रोग

1. भिंडी का पीला शिरा मोजेक : इस रोग का रोगजनक भिंडी मोजेक विषाणु है। यह भिंडी का सर्वाधिक हानिकारक विषाणु जनित रोग है। आजकल यह रोग भारत के भिंडी उगाने वाले सभी क्षेत्रों में व्यापक रूप से पाया जाता है। यदि इस विषाणु जनित रोगा का प्रकोप फसल पर शीघ्र हो तो पूरी फसल समाप्त हो जाती है, और फलों की उपज 50–100 प्रतिशत तक घट जाती है।

लक्षण – इस रोग के मुख्य लक्षण भिंडी की पत्तियों पर दिखाई देते हैं। विषाणु के कारण पत्तियों में शिरा उद्रभासन के साथ–साथ शिरा हरिमाहीनता हो जाती है। पत्तियों पर चमकीला एवम् पीली शिराओं का जाल अधिक स्पश्ट हो जाता है तथा शिराएं एवम् शिरिकाएं कुछ मोटी हो जाती हैं। जब संक्रमण व्यापक हो जाता है, तो नई पत्तियां पीली पड़कर छोटी हो जाती हैं और सम्पूर्ण पौधा बौना हो जाता है। रोग के प्रभाव से पौधों में पुश्पन सीमित हो जाता है तथा इन पर बनी फल्लियां संख्या में कम, छोटी, कड़ी पीले रंग की एवम् विकृत होती हैं।

रोग प्रबंध –

1. खरपतवारों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
2. रोग के लक्षण छोटे पौधों पर दिखाई दें, तो उन्हें उखाड़ कर फेंक देना चाहिए।
3. सफेद मक्खियों से फसल की सुरक्षा के लिए 0.3 प्रतिशत फॉलिड़ोल का छिड़काव करना चाहिए।
4. विषाणु प्रतिरोधी किस्मों जैसे – अर्का अनामिका, अर्का अभय एवम् पंजाब 7, बीओ–2 एवम् हाइब्रिड 6 इत्यादि किस्मों का प्रयोग करना चाहिए।

2. आलू का मोजेक (Potato Mosaic) :–

आलू का यह रोग कई प्रकार के विषाणुओं से उत्पन्न होता है, जिनमें से प्रत्येक विषाणु के एक या एक से अधिक विभेद (Strain) भी उपस्थित हो सकते हैं। आलू मोजेक का रोगजनक – (PVY) पोटेटो वायरस वाई, कुल : पॉटीविरिड़ी, वंश : पॉटीवायरस है। (PVX) पोटेटो वायरस एक्स, (PVS) पोटेटो वायरस एस इत्यादि हैं।

लक्षण – इस रोग के लक्षण आलू की किस्म विभेद पर निर्भर करते हैं। आलू के उग्र मोजेक में ऊपरी पत्तियों पर छाले उत्पन्न होते हैं, तथा पत्ती की निचली सतह पर शिराओं से लगे ऊतकों में क्षय हो जाता है, बाद में ऊतकक्षय के लक्षण शीघ्रता से बढ़कर ऊपरी सतह पर भी दिखाई देने लगते हैं। रोग के बहुत अधिक बढ़ जाने पर पत्तियां पूर्णतया ऊतकक्षयी होकर सूख जाती हैं। संक्रमित कंदों से बने पौधे अवरूद्ध या बौने रह जाते हैं तथा आलू के कंद संख्या में कम

एवम् आकार में छोटे पैदा होते हैं।

आलू के मोजेक रोगों का प्रबन्ध –

1. आलू के स्वस्थ एवम् आधारी बीज ही बोना चाहिए।
2. रोगी पौधों को कंदों सहित उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।
3. रोगवाहक कीट ऐफिड़ एवम् लीफ हॉप्पर ये रोगों को खेत में लगी फसल पर फैलाते हैं। अतः कीटनाशी थिमेट – 10जी की 8 किलोग्राम मात्रा प्रति हेक्टेयर के हिसाब से प्रयोग करना चाहिए।
4. पौधे के हरे ऊपरी भागों को काटकर कन्दों को भूमि में परिपक्व होने के लिये छोड़ देना चाहिए। ऐसा करने से जो आलू प्राप्त होंगे वह मोजेक रहित होंगे।
5. मोजेक प्रतिरोधी किस्मों जैसे – क्रेग्स डिफायंस, अप–टू–डेट, ग्रेट स्कॉट, कुफरी लालीमा, पी.एच.72–22 आदि किस्मों को उगाना चाहिए।

3. आलू का पर्ण बेलन अथवा पत्ती लपेट :–

आलू के विषाणु जनित रोगों में से पत्ती लपेट रोग सबसे भयंकर है। इस रोग का रोगजनक – कोरियम सोलेनी या पोटेटो फ्लोएक नेक्रोसिस विषाणु है।

लक्षण – इस रोग के मुख्य लक्षण पत्तियों पर दिखाई देते हैं। संक्रमित पौधे के पर्णक किनारे पर से ऊपर की ओर मुड़ना आरम्भ करते हैं और मध्य शिरा तक लिपट जाते हैं। कभी–कभी पत्तियों पर हल्का विकीर्ण चितकबरापन भी दिखाई देता है। रोगी बीजों से उत्पन्न पौधों में पर्ण छोटे रह जाते हैं। जिससे पौधा बौना रह जाता है तथा प्राथमिक फ्लोएम का ऊतकक्षय भी पाया जाता है।

रोग प्रबंध – पत्ती मोडक रोग से ग्रस्त आलू के कंदों को छः महीने तक 29.400ब से 35.600ब तापमान पर संग्रहित करने पर इनसे स्वस्थ पौधे उत्पन्न होते हैं।

नोट : आलू के इस रोग की रोकथाम, मोजेक रोग में दी गई हैं।

4. टमाटर का पर्ण–कुंचन रोग : टमाटर का यह विषाणु जनित रोग है। इस रोग का रोगजनक ''टोबेको लीफ कर्ल वायरस'' है, इस विषाणु के कुल 'जेमीनिविरीडी' एवम् वंश – 'जेमीनिवायरस' है। टमाटर की मुख्य शीतऋतु की फसल पर इसका व्यापक प्रकोप होता है। टमाटर के अतिरिक्त पपीता एवम् मिर्च का पर्णकुंचन रोग भी इसी विषाणु से उत्पन्न होता है। इस रोग द्वारा फसल को 50 प्रतिशत तक की हानि होती है।

लक्षण – इस रोग का प्रमुख लक्षण, पौधों की पत्तियों का छोटा रह जाना है तथा नीचे की ओर मुड़ी हुई एवम् एक स्थान पर एकत्रित दिखाई देती हैं। रोगग्रसित पौधों के पर्ण विकृत हो जाते हैं, तथा पत्तियों का खुरदरा एवम् मोटा हो जाना रोग के सामान्य लक्षण है। इस प्रकार की पत्तियों का आकार छोटा रह जाता है, तथा इनकी मध्य शिराएं एवम् शिरिकाएं मोटी हो जाती हैं। रोगी पौधों के पर्वों के वृद्धि अवरोध के कारण सम्पूर्ण पौधा बौना रह जाता है। इन सभी विकृतियों के कारण पौधा झाड़ी का रूप धारण कर लेता है।

रोग प्रबन्ध – टमाटर के पर्णकुंचन रोग की रोकथाम के लिए निम्न उपाय किये जाते हैं :

1. खेत से रोगी संक्रमित पौधों एवम् खरपतवारों को उखाड़ कर जला देना चाहिए।
2. रोग की रोकथाम सफेद मक्खियों से फसल की सुरक्षा करके की जा सकती है। इसके लिए सर्वांगी कीटनाशी मेथिल पेराथॉमान 0.02 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।
3. डायमेथोयेट 0.05 प्रतिशत अथवा कार्बोफ्यूरान (1.5 किलो सक्रिय अवयव प्रति हेक्टेयर) का मृदा में प्रयोग करना चाहिए।

5. मिर्च का पर्ण कुंचन (Leaf Curl) रोग :– यह भी एक विषाणु जनित रोग है। इसका रोगजनक 'टोबेको लीफ कर्ल' विषाणु है। इस रोग द्वारा फसल को 50 प्रतिशत तक की हानि होती है।

लक्षण – इस रोग का मुख्य लक्षण पौधों की पत्तियों का छोटा रह जाना तथा नीचे की ओर मुड़ी हुई एवं एक स्थान पर एकत्रित हो जाती है। रोगग्रसित पौधे के पर्णक विकृत हो जाते हैं तथा सम्पूर्ण पौधा बौना रह जाता है।

रोकथाम –

1. रोगग्रसित पौधे को उखाड़कर फेंक दें।
2. रोगवाहक कीटों के लिए मैलाथियान 1 प्रतिशत का छिड़काव करें।
3. रोग प्रतिरोधी किस्में जैसे पुरी रेड, पुरी ऑरेंज, ज्वाला आदि किस्मों को प्राथमिकता दें।

फाइन ग्रेन सीमेंट
जल्दी निर्माण के लिए

बिरला सम्राट

मज़बूत हर पल

मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थापित विश्वविद्यालय (Act No. 44/2011) एवं UGC u/s 2(f) द्वारा मान्यता प्राप्त

AKS University, Satna

- **एकेएस यूनिवर्सिटी में अध्ययनरत नियमित विद्यार्थी –**
  - नेपाल से
  - देश के 16 राज्यों से – केरल, कर्नाटक, नई दिल्ली, पश्चिम-बंगाल, आन्ध्रप्रदेश, पंजाब, राजस्थान, महाराष्ट्र, उड़ीसा, मेघालय, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उत्तरप्रदेश, बिहार, जम्मू और काश्मीर एवं मध्यप्रदेश
  - केन्द्र शासित प्रदेश से– अंडमान एवं निकोबार
  - मध्यप्रदेश के 39 जिलों से
- IITs एवं देश-विदेश के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय से फैकल्टी
- Live web Classes by expert from India and abroad.
- **International Tie-ups for Students -** UK, Malaysia, Bangladesh, Slovenia, Senegal & Myanmar and many more are in pipeline.
- **Tie-ups with Industries-** Hyatsu corporation, Jain Irrigation, Mamta Energy and many more.
- 100 प्रतिशत विद्यार्थियों का कैम्पस सलेक्शन – अंतिम वर्ष 2014 के 100 प्रतिशत विद्यार्थियों का अच्छे पैकेज के साथ कैम्पस सलेक्शन देश के विभिन्न शहरों में हो चुका है। जैसे कि– कलकत्ता, मुंबई, सूरत, गुड़गांव, इंदौर, रायपुर, बिलासपुर और झांसी।

Engineering & Technology

B.Tech. after 12th

M.Tech. after B. Tech/BE

Polytechnic Diploma after 10th

- Mining
- Cement Technology
- Civil
- Mechanical
- Electrical
- Computer Science

B.Tech. + M.Tech. / MBA = 5 Yrs.

Diploma + B.Tech.+M.Tech./MBA = 7 Yrs.

Information Technology

- BCA (Hons.)
- MCA (3 Yrs.)
- B.Sc. (IT) Hons.
- MCA (2 Yrs.)

Agriculture Sc. & Engg.

- B.Sc. (Ag.) Hons.
- B.Tech. (Agri. Engg.)
- M.Sc. (Agri. Science)

B.Tech (Ag. Engg.) + MBA Integrated (5 Yrs.)

Commerce

- B.Com (Hons.) CSP
  (Corporate Secretarial Practice)
  Based on CS Syllabus
- B.Com (Hons. CAP)
  (CORPORATE ACCOUNTANCY PRACTICE)
  Based on CA Syllabus
- B.Com (Hons.)
  - Taxation & Audit
  - Accounting & Finance
  - Computer App. & e-Com.
  - Economics & Management

Pharmacy

- B Pharma (PCI approved)
- M Pharma
- D Pharma*

- B.Sc. (Hons.) Basic Science
- B.Sc. (Hons.) Biotechnology
- M.Sc.
  - Biotechnology
  - Chemistry
  - Geology
  - Environment Sc.

MSW

M.Phil **Ph.D.**

B.Ed. **MA Education**

Management

BBA (Hons.)

MBA Dual Specialization

- Marketing
- HR
- Finance
- Retail
- Rural
- IT & MIS
- Banking & Insurance
- Agribusiness

*Under process *Condition Apply

क्या आप जानते हैं कि, IITs एवं देश के अधिकांश राज्यों में B.Tech.की डिग्री दी जाती है, BE की नहीं

University Campus : **Sherganj, Panna Road, SATNA (M.P.)**

Toll Free No. 1800 270 0776, Mob. - 09981124776, 09981164776, 08889207776

Satna City Office : Rajiv Gandhi College, Near Bus Stand, Satna (M.P.)

AKS University is dedicated to Uniqueness, Excellence, Creativity, Innovation & Perfection